ये हो नियम पालन किये जाते थे, यह मान लेना भूल होगी।" (ज.सा.इ./पृ.२६७-२६८)।

यही भूल जैकोबी ने प्राचीन निर्ग्रन्थों को 'एकवस्त्र स्वतेलाल' मानने में की है, तथा किसी अँग्रेज विद्वान् ने ओदातवसना का अर्थ 'श्वेतवस्त्रधारी' किया है, इससे असहमत होने के कारण मुनि कल्याणविजय जी ने टिप्पणी की है कि "अँग्रेज कोई केवली नहीं हैं, जो उनके कहने से अवदात (श्वेत) का अर्थ श्वेत ही मान लिया जाय और अन्यवर्ण न माना जाय।"(ज.सा.इ./पृ. ३२३)।

मुनि जी की यह टिप्पणी मैं जैकोबी के विषय में भी दुहराना चाहता हूँ कि जर्मन विद्वान् कोई केवली नहीं हैं, जो उनके कहने से 'एकशाटक' पद को 'निर्ग्रन्थ' का विशेषण मान लिया जाय। वस्तुतः वह एक स्वतंत्र सम्प्रदाय का नाम था।

९
निर्ग्रन्थों के लिए भी 'अचेलक' शब्द का प्रयोग

'उववाइसुत्त' के पूर्वोक्त उद्धरण में निर्ग्रन्थों और अचेलकों का अलग-अलग निर्देश है, इससे यह नहीं समझ लेना चाहिए कि अचेलक (आजीविक) सम्प्रदाय के ही मुनि नग्न रहते थे, निर्ग्रन्थ सम्प्रदाय के नहीं। दोनों सम्प्रदायों के मुनि नग्न रहते थे, किन्तु 'निर्ग्रन्थ' शब्द दिगम्बर जैन साधुओं के लिए रूढ़ हो चुका था। अतः उनसे भिन्नता का बोध कराने के लिए आजीवक (आजीविक) सम्प्रदाय के साधु 'अचेलक' शब्द से अभिहित किये जाने लगे। 'उववाइसुत्त' के पूर्वोक्त उद्धरण में 'अचेलक' शब्द आजीवकों के लिए ही प्रयुक्त हुआ है। बौद्धों में निर्ग्रन्थों का नग्न रहना तो 'निर्ग्रन्थ' (ग्रन्थाहित-वस्त्रादिपरिग्रहरहित) शब्द से ही प्रसिद्ध था।

तथापि बौद्धसाहित्य में निर्ग्रन्थों के लिए भी 'अचेलक' शब्द का प्रयोग हुआ है, इसके अनेक प्रमाण हैं। अंगुत्तरनिकाय (भा.३) के छक्कनिपातसुत्त में पूरण कस्सप ने अचेलक साधुओं के श्वेतवस्त्रधारी श्रावकों को इहिंगिनीजातीय बतलाया है—

"पूरणेन कस्सपेन इत्तिहापिजाति पञ्ञत्ता, सिही ओदातवसनो[७८] अचेलकसावको।"[७९]

ये अचेलक साधु आजीवक (आजीविक) सम्प्रदाय के नहीं थे, क्योंकि आजीवकों को पूरण कस्सप ने कृष्ण और अभिजातियों में परिगणित किया है।[८०]

---

७८. ओदातवसन - श्वेतवस्त्रधारी / भदन्त आनन्द कौसल्यायन-कृत पालि-हिन्दी कोश / पृ.४१।

७९. देखिये, अंगुत्तरनिकायपालि भा.३ का पूर्वोद्धृत अंश (अध्याय ४/प्र.२/शी.८)।

अतः सिद्ध है कि उपर्युक्त वाक्य में निर्ग्रन्थों को ही 'अचेलक' शब्द से अभिहित किया गया है।

दूसरा प्रमाण यह है कि 'अंगुत्तरनिकाय' के उपर्युक्त वाक्य में श्वेतवस्त्रधारी गृहस्थ अचेलकों के श्रावक कहे गये हैं और 'दीघनिकाय' के निम्नलिखित वाक्य में वे जिण्णनाटपुत्त (भगवान् महावीर) के श्रावक बतलाये गये हैं—

"निगण्ठस्स नाटपुत्तस्स सावका सिही ओदातवसना।" (पपञ्चसूदनी / दीघनिकायट्ठकथा / भा.३ / पृ.६८३)।

इससे बिलकुल स्पष्ट है कि प्राचीन बौद्धसाहित्य में 'निर्ग्रन्थों' का कथन 'अचेलक' शब्द से भी हुआ है।

तीसरा प्रमाण यह है कि मज्झिमनिकाय (प्रथम भाग) में निगण्ठपुत्त सच्चक एवं दीघनिकाय (प्रथम भाग) में अचेल कस्सप का प्रसंग है। 'निर्ग्रन्थपुत्र' विशेषण से ज्ञात होता है कि सच्चक निर्ग्रन्थसम्प्रदाय के श्रावक का पुत्र था तथा 'अचेल' विशेषण सूचित करता है कि कस्सप नग्न साधु थे। ये दोनों गौतम बुद्ध के समक्ष अचेलक आजीवक साधुओं के अशोभनीय आचार का वर्णन करते हैं। यदि अचेल कस्सप स्वयं आजीवक साधु होते तो, ऐसा न करते। इससे सिद्ध है कि वे निर्ग्रन्थसम्प्रदाय के साधु थे। इसके अतिरिक्त निगण्ठपुत्त सच्चक और अचेल कस्सप दोनों आजीविकों के अशोभनीय आचार का वर्णन करते हैं, इससे भी दोनों का सम्बन्ध (निर्ग्रन्थ) सम्प्रदाय से सम्बद्ध होना सूचित होता है। यह इस बात का प्रमाण है कि प्राचीन बौद्ध साहित्य में निर्ग्रन्थ साधुओं को भी 'अचेलक' विशेषण दिया गया है।

निगण्ठपुत्त सच्चक और अचेल कस्सप आजीवकों के जिस अशोभनीय आचार का वर्णन करते हैं, उसे निगण्ठपुत्त सच्चक तो स्पष्ट शब्दों में आजीवकों का आचार कहता है, अचेल कस्सप स्पष्ट शब्दों में नहीं कहते, पर वह सच्चक द्वारा वर्णित आचार से अभिन्न है, इससे सिद्ध है कि वह आजीवकों का ही आचार है। दोनों के द्वारा वर्णित आचार दोनों उद्धृत किया जा रहा है।

१०
निगण्ठपुत्त सच्चक द्वारा वर्णित आजीविकों का आचार

निगण्ठ सच्चक का गौतम बुद्ध के साथ इस प्रकार वार्तालाप होता है—

"एकमन्तं निसिन्नो खो सच्चको निगण्ठपुत्तो भगवन्तं एतदवोच—सन्ति भो गोतम! एके समणब्राह्मणा कायपावनतुपेलमनुयुत्ता विहरन्ति, ते विकप्पापज्जं---।"

ये एकवस्त्रधारी होते हैं, जब कि मुनि कल्याणविजय जी ने 'एकेआरा साधु' अर्थ लिख है।

ये दोनों अर्थ युक्तिसंगत नहीं है। 'अनुयोगद्वारसूत्र' के कर्ता ने यहीं अभिधानों के उदाहरण में कहीं भी 'च' अव्यय का प्रयोग नहीं किया है, जबकि वे भिन्न-भिन्न प्रकार के मनुष्यों के वाचक हैं। जैसे उन्होंने शुक्लाभिजाति में 'आजीवका आजीवणिनियो' उदाहरण दिये हैं। यहाँ 'च' अव्यय का प्रयोग नहीं है, फिर भी ये दोनों पद भिन्न-भिन्न व्यक्तियों के वाचक हैं। 'आजीवका' पद आजीवक (आजीविक--देखिये, पा.टि.८८) सम्प्रदाय के साधुओं या गृहस्थों का वाचक है तथा 'आजीवणिनियो' पद इस सम्प्रदाय की स्त्रीजनों या गृहस्थ स्त्रियों का। इसी प्रकार तण्डुलवैचारिक के 'सुद्धा मच्छपालका चोरा खोयाडका बन्धणवाणिका' इस उदाहरणों में भी 'च' अव्यय प्रयुक्त नहीं है, तथापि ये भिन्न-भिन्न प्रकार के क्रूरकर्मा मनुष्यों के सूचक हैं। 'कट्ठे बच्चे, किसो मट्ठिचो, मक्खलिगोसालो' ये पण्णवणासूत्रवृत्ति के मनुष्यों के उदाहरण हैं। ये भी 'च' अव्यय के बिना ही अलग-अलग व्यक्तियों का अर्थ प्रकट करते हैं। 'सिवट्ठा एकसाटका' इसी प्रकार का प्रयोग है। यहाँ भी 'च' अव्यय का प्रयोग नहीं है, फिर भी दोनों पद स्वतंत्र हैं और भिन्न-भिन्न सम्प्रदायों के साधुओं का बोध कराते हैं। 'निग्गंथ' पद दिगम्बरजैन सम्प्रदाय के साधुओं का बोधक है और 'एकसाटक' (एकशाटक) पद एकशाटकसम्प्रदाय के साधुओं का। इस सम्प्रदाय के साधु केवल एकवस्त्र धारण करते थे, इसलिए उनका सम्प्रदाय 'एकशाटक' नाम से प्रसिद्धि को प्राप्त हुआ था। उद्धानपालि सुत्तपिटक के खुद्दकनिकाय का प्राचीन ग्रन्थ है। उसके निम्नलिखित कथन से यह बात एकदम स्पष्ट हो जाती है—

"तेन खो पन समयेन सत्त च जटिला, सत्त च निग्गण्ठा, सत्त च अचेलका, सत्त च एकसाटका, सत्त च परिब्बाजका, पक्कहट्ठकवणप्पलोभा खारीविविधमादाय भगवतो अविदूरे अतिक्कमन्ति।" (सत्तपिटकसुत्त/अञ्ञतित्थगो/उदानपालि/पृ. १४३)।

अनुवाद—"(जब गौतम बुद्ध ग्राम के समीप ध्यान में लीन बैठे हुए थे) उस समय सात जटिल (जटाधारी साधु), सात निर्ग्रन्थ (निर्ग्रन्थसम्प्रदाय के साधु), सात अचेलक (अचेलक-आजीवक-सम्प्रदाय के साधु), सात एकशाटक (एकवस्त्रधारी-सम्प्रदाय के साधु) और सात परिव्राजक (परिव्राजक-सम्प्रदाय के साधु), जिनकी कौंध, जल और लौंग बढ़े हुए थे तथा जो विविध उपकरण लिए हुए थे, आकर भगवान् बुद्ध के पास बैठ गये।"

इस कथन में एकशाटक साधुओं को निर्ग्रन्थों से पृथक् निर्दिष्ट किया गया है। इससे स्पष्ट है कि 'एकशाटक' 'निर्ग्रन्थ' का विशेषण नहीं, अपितु निर्ग्रन्थादि से भिन्न

सम्प्रदाय के साधुओं का वाचक है। अतः मुनि श्री कल्याणविजय जी ने 'निगण्ठा एकसाटका' इस उल्लेख से जो यह अर्थ निकाला है कि बुद्ध के समय में निर्ग्रंथ साधु एक वस्त्र अवश्य रखते थे, अतः यह उल्लेख श्वेताम्बर-सम्प्रदाय की प्राचीनता का प्रमाण है, यह धारणा गलत है। उक्त उल्लेख में 'निर्ग्रन्थ' शब्द 'एकशाटक' विशेषण से रहित है, अतः सिद्ध है कि प्राचीन बौद्ध-साहित्य में 'निर्ग्रन्थ' साधु निर्ग्रन्थ रूप (नग्नरूप) में ही वर्णित हैं। इससे दिगम्बरजैन-सम्प्रदाय की प्राचीनता प्रमाणित होती है। फलस्वरूप मुनि कल्याणविजय जी का यह दावा भी गलत सिद्ध हो जाता है कि प्राचीन बौद्ध साहित्य में नग्न जैन साधुओं का उल्लेख कहीं भी नहीं है। और जो दावा उन्होंने निम्नलिखित वक्तव्य में किया है, वह भी औंधे मुँह गिर जाता है। वे प्रो० जैकोबी के कथन को प्रामाणिक मानने का दावा करते हुए लिखते हैं—

"बौद्धों की अर्वाचीन जातककथाओं में निर्ग्रन्थ श्रमणों को 'नग्न निर्ग्रन्थ' लिखा देखकर कोई कह दे कि 'प्राचीन निर्ग्रन्थ भी नग्न होते थे' तो ऐसे आंशिक ज्ञानवालों के कथन से प्राचीन श्रमणों की नग्नता सिद्ध नहीं हो सकती। जिन्होंने बौद्धों के सबसे प्राचीन पालिग्रन्थों और प्राचीन जैनसूत्रों का तलस्पर्शी अध्ययन किया है, ऐसे विद्वानों को सम्भवतः इस विषय में अधिक विश्वसनीय हो सकती है। डॉक्टर हर्मन जैकोबी इसी प्रकार के विद्वान् हैं और इन्होंने जैनसूत्रों की प्रस्तावना में प्राचीन बौद्ध ग्रन्थों के उल्लेखों से यह बात अच्छी तरह सिद्ध कर दी है कि प्राचीन निर्ग्रन्थ श्रमण एक वस्त्र रखते थे। इसीलिए बौद्ध लोग इन्हें 'एकशाटक' कहा करते थे।"(इ.प.म./पृ.३१८-३१९)।

यहाँ मुनि जी ने प्राचीन बौद्धसाहित्य में 'एकशाटक' (एकशाटक) शब्द के प्रयोग को निर्ग्रन्थ श्रमणों के एकवस्त्रधारी होने का प्रमाण इसलिए माना है कि प्राचीन बौद्धसाहित्य के तलस्पर्शी अध्येता डॉ० जैकोबी ने ऐसा कहा है। किन्तु जैकोबी के अध्ययन की तलस्पर्शिता पर उद्धानपालि का उपर्युक्त प्रमाण प्रश्नचिह्न लगा देता है। उद्धानपालि के उपर्युक्त उद्धरण से सिद्ध है कि 'एकशाटक' निर्ग्रन्थों का विशेषण नहीं, अपितु एक स्वतंत्रसम्प्रदाय का नाम है, अतः उसे निर्ग्रन्थों का विशेषण मानकर प्राचीन निर्ग्रन्थों को एक वस्त्र रखनेवाला घोषित करना भ्रान्तिपूर्ण निष्कर्ष है। अतः मुनि जी का जैकोबी के निष्कर्ष को प्रामाणिक मानने का दावा भी धराशायी हो जाता है।

जैकोबी के गलत निष्कर्ष यहीं तक मुनि श्री कल्याणविजय जी भी नहीं मानते। वे लिखते हैं—"उत्तराध्ययनसूत्र के उपोद्घात में प्रो० जैकोबी ने आजीविक और निर्ग्रन्थों के आचारों को एकसा बताई है, पर वास्तव में इन दोनों सम्प्रदायवालों के आचारों में बहुत बड़ा अन्तर था। यद्यपि मज्झिमनिकाय में आजीविकों के कठिनतप का और भिक्षा के नियमों का वर्णन है, तथापि सब आजीविक भिक्षुओं द्वारा अष्टमासात

अपनायी जाने वाली नग्नता कैसे स्वीकार कर ली? तत्पश्चात् भगवान् ने भिक्षुओं को एकत्र कर स्पष्ट आदेश दिया-'भिक्षुओ! किसी भी भिक्षु को तीर्थिकों के समान नग्नता नहीं अपनानी चाहिए। जो अपनायेगा उसे स्थूलाक्षय दोष लगेगा।" पालिमूल इस प्रकार है—

"तेन खो पन समयेन अञ्ञतरो भिक्खु नग्गो हुत्वा येन भगवा तेनुपसङ्कमि। उपसङ्कमित्वा भगवन्तं एतदवोच—"भन्ते, भन्ते! अनेकपरियायेन अभिक्खस्स सन्तुट्ठस्स सल्लेखस्स धुतस्स पासादिकस्स अपचयस्स विरियारम्भस्स वण्णवादी। इदं, भन्ते! नग्गियं अनेक-परियायेन अभिक्खताय सन्तुट्ठिताय सल्लेखाय धुतताय पासादिकत्त अपचयाय विरियारम्भाय संवत्तति। साधु भन्ते! भगवा भिक्खूनं नग्गियं अनुजानातू" ति। विगरहि बुद्धो भगवा—"अननुच्छविकं मोघपुरिस! अननुलोमिकं, अप्पतिरूपं, अस्सामञ्ञकं, अकप्पियं, अकरणीयं। कथं हि नाम त्वं मोघपुरिस! नग्गियं तित्थियसमादानं समादियिस्सति (समादियिस्ससि) ? नेतं मोघपुरिस! अप्पसन्नानं वा पसादाय --- पे० ---।" विगरहित्वा धम्मिं कथं कत्वा भिक्खू आमन्तेसि—"न, भिक्खवे! नग्गियं तित्थियसमादानं समादियितब्बं। यो समादियेय्य आपत्ति थुल्लच्चयस्सा" ति। (नग्गकसुत्तवण्णना / मज्झिमनिकाय / पपञ्चसूदनी / विनयपीटक-महावग्गपालि / पृ.४९१-९२)।

यहाँ नग्न होकर आये भिक्षु के द्वारा इच्छाओं को अल्प करनेवाले सन्तोष के अपनाने का समर्थन निश्चितरूप से निर्ग्रन्थों के नग्नत्व की ओर संकेत करता है, क्योंकि आजीविकों के अहेतुवादी होने से उनका नग्नत्व अकारणसिद्धान्त का प्रतिपादक नहीं था।

७

नग्नता एवं कुशचीवादि धारण करने का निषेध

इसी प्रकार कोई भिक्षु कुशचीर (कुशनिर्मित वस्त्र) पहन कर आया, कोई वल्कलचीर और कोई फलकचीर। कोई केशों से बना कम्बल ओढ़कर आया और कोई वालकम्बल ओढ़कर। कोई उलूकपंखनिर्मित वस्त्र धारण करके आया और कोई मृगचर्म। और प्रत्येक ने इन के धारण करने से वही लाभ बतलाये जो पूर्व में वस्त्र पहने से बतलाये गये थे। किन्तु भगवान् बुद्ध ने सबको पृथक्-पृथक् किया की और भिक्षुओं को आमंत्रित कर आदेश दिया—"भिक्षुओ! ये मृगचर्म आदि तीर्थिकों की पहचान हैं, इन्हें धारण नहीं करना चाहिए। जो धारण करेगा उसे स्थूलाक्षय दोष लगेगा।"[२८]

२८. "न भिक्खवे! अजिनक्खिप्पं तित्थियधजं धारेतब्बं। यो धारेय्य आपत्ति थुल्लच्चयस्स ति।" कुसचीरादि-पटिक्खेपकथा / पोत्थकारुळ्हग्रन्थ / विनयपीटक-महावग्गपालि / पृ. ४९२।

यहाँ नग्न रहना और कुश आदि के वस्त्र धारण करना अन्यतैर्थिक (बौद्धेतर सम्प्रदायों के) साधुओं के लक्षण बतलाये गये हैं। उनमें नग्नता केवल निर्ग्रन्थों और आजीविकों का लक्षण थी। अतः स्पष्ट है कि बुद्ध ने आजीविकों और निर्ग्रन्थों को ही नग्नत्व के अनुकरण का निषेध किया है।

८

एकशाटक-सम्प्रदाय निर्ग्रन्थ-सम्प्रदाय से भिन्न

'उदानपालि' का प्रमाण

श्वेताम्बर मुनि श्री कल्याणविजय जी ने श्वेताम्बर-सम्प्रदाय को प्राचीन सिद्ध करने के लिए बौद्धसाहित्य से एक भ्रान्तिमूलक प्रमाण प्रस्तुत किया है। वे लिखते हैं—

"अब हम देखेंगे कि श्वेताम्बर-सम्प्रदाय की प्राचीनता को सिद्ध करने वाले कुछ प्रमाण भी उपलब्ध होते हैं या नहीं?

"बौद्धों के प्राचीन पालिग्रन्थों में आजीविकमत के नेता गोशालक के कुछ सिद्धान्तों का वर्णन मिलता है, जिसमें मनुष्यों को कृष्ण, नील, लोहित, हारिद्र, शुक्ल और परमशुक्ल ये छः अभिजातियाँ बताई गई हैं। इनमें से दूसरी नीलाभिजाति में बौद्धभिक्षुओं और तीसरी लोहितभिजाति में निर्ग्रन्थों का समावेश किया है। इस स्थल में निर्ग्रन्थों के लिए प्रयुक्त बौद्धसूत्र के शब्द इस प्रकार हैं—"लोहितभिजाति नाम निग्गण्ठा एकसाटकाति वदति।" अर्थात् एक चीथड़ेवाले निर्ग्रन्थों को यह लोहितभिजाति कहता है। (अंगुत्तरनिकाय / भाग ३ / पृ.३८३)।

"इस प्रकार गोशालक ने निर्ग्रन्थों के लिए जो यहाँ एक चीथड़ेवाले यह विशेषण प्रयुक्त किया है और इसी प्रकार दूसरे स्थलों में भी अतिप्राचीन बौद्ध लेखकों ने जैन निर्ग्रन्थों के लिए एकसाटक विशेषण लिखा है, इससे सिद्ध होता है कि बुद्ध के समय में भी महावीर के साधु एक वस्त्र अवश्य रखते थे, तभी अन्य दार्शनिकों ने उनको उक्त विशेषण दिया है।

"कट्टर सम्प्रदायिक दिगम्बर यह 'एक साटक' विशेषण उदासीन निर्ग्रन्थ श्रावकों के लिए प्रयुक्त होने की संभावना करते हैं, परन्तु उन्हें यह मालूम नहीं कि बौद्ध पिटकों में 'निग्गण्ठ' शब्द केवल निर्ग्रन्थ साधुओं के लिए प्रयुक्त हुआ है, श्रावकों के लिए नहीं। वहाँ कहीं भी जैन श्रावकों का प्रसंग आया है, वहाँ सर्वत्र 'निग्गण्ठसावक चक्खुमन्त सावकत' (निर्ग्रन्थ ज्ञातपुत्र के श्रावक) अथवा निगंठसावक (निर्ग्रन्थों के श्रावक) इस प्रकार श्रावक शब्द का ही उल्लेख हुआ है, न कि 'निगंठ' शब्द का। इसलिए 'निगंठ' शब्द का 'श्रावक' अर्थ लगाना कोरी हठधर्मी है।" (प.प.म /पृ.३२२)।

यहाँ मेरा पहला निवेदन यह है कि मुनिजी ने अंगुत्तरनिकाय के उद्धरण को यथावत् उपस्थित नहीं किया, अपितु शब्दों में परिवर्तन करके प्रस्तुत किया है। दूसरी बात यह है कि छह अभिजातियों का सिद्धान्त आजीविक-मत के नेता गोसालक का नहीं, अपितु अक्रियावादी पूरण कस्सप का है। प्रमाणार्थ मैं उक्त सिद्धान्त को ज्यों का त्यों उद्धृत कर रहा हूँ—

"एकमन्तं निसिन्नो खो आयस्मा आनन्दो भगवन्तं एतदवोच—'पूरणेन, भन्ते, कस्सपेन छअभिजातियो पञ्ञत्ता—कण्हाभिजाति पञ्ञत्ता, नीलाभिजाति पञ्ञत्ता, लोहिताभिजाति पञ्ञत्ता, हलिद्दाभिजाति पञ्ञत्ता, सुक्काभिजाति पञ्ञत्ता, परमसुक्काभिजाति पञ्ञत्ता।

"तत्रिदं भन्ते! पूरणेन कस्सपेन कण्हाभिजाति पञ्ञत्ता, ओरब्भिका सूकरिका साकुणिका मागविका लुद्दा मच्छघातका चोरा चोरघातका बन्धनागारिका ये वा पनञ्ञे पि केचि कूरकम्मन्ता।

"तत्रिदं भन्ते! पूरणेन कस्सपेन नीलाभिजाति पञ्ञत्ता, भिक्खू कण्टकवुत्तिका ये वा पनञ्ञे पि केचि कण्हत्ताय पटिपन्नका।

"तत्रिदं भन्ते! पूरणेन कस्सपेन लोहिताभिजाति पञ्ञत्ता, निग्गण्ठा एकसाटका।

"तत्रिदं भन्ते! पूरणेन कस्सपेन हलिद्दाभिजाति पञ्ञत्ता, गिही ओदातवसना अचेलक-सावका।

"तत्रिदं भन्ते! पूरणेन कस्सपेन सुक्काभिजाति पञ्ञत्ता, आजीवका आजीव-किनियो।

"तत्रिदं भन्ते! पूरणेन कस्सपेन परमसुक्काभिजाति पञ्ञत्ता, नन्दो वच्छो किसो सङ्किच्चो मक्खलि गोसालो। पूरणेन, भन्ते, कस्सपेन इमा छअभिजातियो पञ्ञत्ता ति।"
(छअभिजातिसुत्त/अंगुत्तरनिकायपालि ६,७,८ निपात/भा.३/पृ.९३-९४)।

यहाँ प्रत्येक अनुच्छेद में पूरण कस्सप नाम दुहराया गया है। इस प्रकार सात बार इस नाम की आवृत्ति हुई है, फिर भी मुनि जी ने 'छह अभिजातियों' के सिद्धान्त को मक्खलि गोसालक द्वारा प्रवर्तित बतलाया है। दूसरी बात यह है कि पूरण कस्सप द्वारा प्रज्ञप्त पहली अभिजाति का नाम कण्हाभिजाति (तृष्णाभिजाति) है, किन्तु मुनिजी ने उसके स्थान में कृष्णाभिजाति नाम लिखा है। कृष्णाभिजाति तो गौतम बुद्ध द्वारा प्रज्ञप्त छह अभिजातियों में से है।[२५] तीसरी बात यह है कि अंगुत्तरनिकाय का मूल पालिपाठ इस प्रकार है—

२५. "अहं खो पनानन्द छअभिजातियो पञ्ञपेमि।—इध पनानन्द एकच्चो कण्हाभिजातियो—।"
(छअभिजातिसुत्त/अंगुत्तरनिकायपालि/६,७,८ निपात/भा.३/पृ. ९४)।

"तत्रिदं भन्ते! पूरणेन कस्सपेन लोहिताभिजाति पञ्ञत्ता, निग्गण्ठा एकसाटका।"

संस्कृत छाया—तत्रेदं भन्ते! पूरणेन काश्यपेन लोहिताभिजातिः प्रज्ञप्ता, निर्ग्रन्था एकशाटकाः।

हिन्दी अनुवाद—भन्ते! उक्त छह अभिजातियों में पूरण काश्यप ने निर्ग्रन्थों और एकशाटधारी साधुओं को लोहिताभिजाति का बतलाया है।

किन्तु मुनि जी ने उपर्युक्त मूलपाठ के स्थान में निम्नलिखित पाठ लिखा है-"लोहिताभिजाति नाम निगंथा एकसाटकाति कहति।" और इसका यह अर्थ बतलाया है—"एक चौथड़ेवाले निर्ग्रन्थों को यह लोहिताभिजाति कहता है।"

यहाँ द्रष्टव्य है कि जो शब्द मुनि जी के द्वारा बौद्धसूत्र के शब्द बतलाये गये हैं, वे बौद्धसूत्र से अर्थात् अंगुत्तरनिकाय के उपर्युक्त मूलपाठ से शब्द और वाक्य दोनों दृष्टियों से बहुत भिन्न हैं। उदाहरणार्थ, मुनि जी ने अपने वाक्य में 'नाम' शब्द का प्रयोग किया है, किन्तु मूलपाठ में 'नाम' शब्द नहीं है। मुनि जी ने 'निगंथा' शब्द लिखा है, जबकि मूलपाठ में 'निग्गण्ठा' पद है और पालिभाषा में 'निगंथा' रूप बनता ही नहीं है। मुनि जी ने 'कहति' क्रिया का प्रयोग किया है, जबकि मूलपाठ में 'पञ्ञत्ता' क्रिया है और मूलपाठ में 'पूरणेन कस्सपेन पञ्ञत्ता' इस उक्त वाक्यरचना कर्मवाच्य रूप है, जबकि मुनि जी ने 'कहति' क्रिया का प्रयोग कर वाक्य को कर्तृवाच्य में परिवर्तित कर दिया है। मुनि जी ने 'एकसाटका' के साथ 'ति' अव्यय प्रयुक्त किया है, जबकि मूलपाठ में उसका अभाव है। इससे लगता है मुनि जी ने मूलग्रन्थ देखने का कष्ट नहीं उठाया और किसी से सुनकर उपर्युक्त वाक्य लिख दिया है। अस्तु।

यहाँ ध्यान देने योग्य मुख्य बात यह है। कि लोहिताभिजाति के उदाहरण में जो 'निगण्ठा एकसाटका' पद आये हैं उनमें 'एकसाटका' पद 'निगण्ठा' का विशेषण नहीं है, बल्कि दोनों स्वतंत्र पद हैं और भिन्न-भिन्न सम्प्रदायों के साधुओं के वाचक हैं। 'निगण्ठा' पद तीर्थंकर महावीर के अनुयायी नग्न साधुओं का वाचक है और 'एकसाटका' पद 'एकसाटक'-सम्प्रदाय के साधुओं का, जो एक वस्त्र धारण करने के कारण इस नाम से प्रसिद्ध थे।

किन्तु उक्त पदों के साथ 'निगण्ठा एकसाटका वा' इस प्रकार विकल्पसूचक 'वा' अव्यय का प्रयोग न होने से बाबू कामताप्रसाद जी एवं श्वेताम्बरमुनि श्री कल्याणविजय जी ने 'एकसाटका' पद को 'निगण्ठ' का विशेषण मानकर दोनों पदों को निर्ग्रन्थ सम्प्रदाय के दो साधकों का वाचक मान लिया है। बाबू कामताप्रसाद जी ने उनसे "दिगम्बरसम्प्रदाय के श्वेतपट नामक उत्कृष्ट श्रावक" अर्थ ग्रहण किया है,[२६] क्योंकि

२६. भगवान् महावीर और महात्मा बुद्ध / पृ. ६०-६१, २१०।

अन्य श्रमण-ब्राह्मण से पूछा है? तब अजातशत्रु उपर्युक्त छह तीर्थंकरों के मत का निराकरण करता है। यह बतलाता है कि पूरण काश्यप अक्रियावादी है, क्योंकि वह मानता है कि हिंसा, अस्तेय आदि, चोरी, परस्त्रीगमन आदि करने-कराने से न कोई पाप होता है, न दान, यज्ञ आदि करने से कोई पुण्य। समस्त क्लेशोत्पत्ति अहेतुकादी है। वह कहता है कि प्राणियों के सुख-दुःख का कोई कारण नहीं है। वे मात्र या संयोग से ही दुःख करते हैं। अजितकेशकम्बल उच्छेदवादी है। उसकी मान्यता है कि न कोई पुण्य होता है, न पाप, न उनका कोई अच्छा-बुरा फल होता है, न स्वर्ग है, न नरक, न आत्मा, न गौण। देहत्याग के बाद सब यहीं हो जाता है। मरने के बाद कुछ भी नहीं रहता। प्रकुध कात्यायन अकृतवाद का प्रणेता है। यह मानता है कि संसार के पदार्थ अगत और निष्क्रिय हैं। वे किसी को सुख-दुःख उत्पन्न करने में समर्थ नहीं हैं। संजयवेलट्ठिपुत्र अनिश्चयवादी है। परलोक के विषय में पूछने पर वह कहता है-"यदि मैं मानूँ कि परलोक है, तभी न मैं आपको बताऊँ कि परलोक है। परन्तु मैं ऐसा भी नहीं कहता, वैसा भी नहीं कहता, मैं अन्यथा (दूसरी तरह से) भी नहीं कहता, मैं यह भी नहीं कहता कि यह नहीं है, मैं यह भी नहीं कहता कि यह नहीं नहीं है। परलोक नहीं है, परलोक है भी और नहीं भी, परलोक न है, न नहीं है।" (सामञ्ञफलसुत्त / छ सिन्धियवग्ग / दीघनिकायपालि/ भा.१/ पृ.५७-६५)।

इन पाँच दार्शनिकों के मतों का निराकरण करने के बाद राजा अजातशत्रु गौतम बुद्ध से कहता है कि इसी प्रकार एक बार मैंने निगंठनाटपुत्र के चतुर्याम संवर के शासन का फल पूछा। तब वे बोले—"इध, महाराज! निगण्ठो चातुयामसंवरसंवुतो होति। कथं च, महाराज! निगण्ठो चातुयामसंवरसंवुतो होति? इध, महाराज! निगण्ठो सब्बवारिवारितो च होति, सब्बवारियुतो च, सब्बवारिधुतो च, सब्ब-वारिफुटो च। एवं खो, महाराज! निगण्ठो चातुयामसंवरसंवुतो होति। इति खो, महाराज! निगण्ठो एवं चातुयामसंवरसंवुतो होति, अवेदी च, महाराज! निगण्ठो गतत्तो च यतत्तो च ठितत्तो चा ति।" (सामञ्ञफलसुत्त / छ सिन्धियवग्ग / दीघनिकायपालि / भा. १ / पृ.६३)।

अनुवाद—"महाराज! निर्ग्रन्थ (जैन साधु) चार संवरों (संयमों) से संवृत (संयत) रहता है। महाराज! निर्ग्रन्थ चार संवरों से संवृत कैसे रहता है? महाराज! निर्ग्रन्थ १. जल के व्यवहार का अधिक से अधिक वारण करता है (ताकि जल में रहने वाले सूक्ष्म जीवों का हनन न हो), २. सभी प्रकार के पापों के निवारण से युक्तात्मा (पापमुक्त) होता है और ३. भविष्य में होने वाले पापों के निवारण में लगा रहता है। महाराज! इस प्रकार

निर्ग्रन्थ चार संवरों से संवृत रहता है। इसीलिए लोक में निर्ग्रन्थ को संवर के विषयों का अन्तिमबुद्ध (गतात्मा), संयमी (यतात्मा) और स्थितात्मा (ठितात्मा) कहा जाता है।"

५

तीर्थंकर महावीर को 'निर्ग्रन्थ' संज्ञा क्यों?

उपर्युक्त सात श्रमणचर्या के प्रणेताओं में पाँच नग्न नहीं रहते थे, इसलिए ये निर्ग्रन्थ नाम से प्रसिद्ध नहीं हुए। मक्खलिगोसाल (आजीविक सम्प्रदाय का प्रवर्तक) और तीर्थंकर महावीर नग्न रहते थे, तथापि मक्खलिगोसाल अहेतुवादी था अर्थात् वह मानता था कि प्राणियों के सुख-दुःख का कोई कारण नहीं है, वे मात्र संयोगजन्य हैं, अतः दुःखनिवृत्ति और सुखप्राप्ति के लिए शरीरादि विकारों के परिहार का उसके मत में कोई भी स्थान न होना स्वाभाविक है। इसलिए उसका नग्न रहना अपरिग्रहसिद्धान्त पर आधारित नहीं था। फलस्वरूप वह 'निर्ग्रन्थ' संज्ञा का पात्र नहीं हुआ। केवल भगवान् महावीर का नग्नव्रत अपरिग्रह-सिद्धान्त से प्रसूत था, अतः वे ही 'निर्ग्रन्थ' विशेषण के अधिकारी हुए।

६

अन्यतीर्थिकवत् नग्न रहने का निषेध

पूर्वोक्त छह चौदेसा दार्शनिकों को बौद्धसाहित्य में अन्यतीर्थिक या तैर्थिक कहा गया है।[क] उनमें आजीविक (मक्खलिगोसाल के अनुयायी साधु) और निर्ग्रन्थ नग्न रहते थे, जैन अन्यतीर्थिक बौद्ध भिक्षुओं से भिन्न वेशभूषा धारण करते थे। गौतम बुद्ध अपने भिक्षुओं को इन तैर्थिकों का वेश धारण करने से सख्त मना करते थे। महावग्ग की नग्गिकपटिक्खेपकथा में कहा गया है—

"एक समय कोई भिक्षु नग्न होकर भगवान् (गौतम बुद्ध) के पास गया। पास में जाकर बोला-भगवन् ने (आपने) अनेक प्रकार से इच्छाओं को अल्प करने वाले, सन्तुष्ट, सल्लेख (तपस्वी), धुत (अकामक), प्रासन, अनतिपही एवं पेसलवान् भिक्षु की प्रशंसा की है। भले! यह नग्नता साधक को उपर्युक्त गुणों के विकास में सहायक होती है। अतः अच्छा हो, भले! कि आप भिक्षुओं को नग्न रहने की अनुमति दें। भगवान् ने उस भिक्षु के कथन को निन्द्य करते हुए कहा—'अरे निकम्मे आदमी! तेरा यह कथन अनुचित है, अनुचित है, अननुरूप (अननुकूल) है, श्रमणाचार के विरुद्ध है, अतः अविहित एवं अकरणीय है। मोघपुरुष! तूने तीर्थिकों (अन्यतीर्थिकों) के द्वारा

क- "छ अञ्ञतित्थिया" सामञ्ञफलसुत्त / दीघनिकायपालि / भा.१ / पृ.५१।
ख- "अञ्ञतित्थिया परिब्बाजिका"/ महाव्युत्पत्ति / यही / पृ.१८८।

लेते हैं। प्रव्रज्या-ग्रहण करने का वर्णन निम्नलिखित गद्यांशों में किया गया है—

तदाहं पातयित्वान शिरोदुर्गाहि वनुकं।
सनिकं सेतवत्थानं उपेत्वा पब्बजिं अहं॥ ३६॥

सण्हासेन च केसे ये लुञ्चित्वा सब्बसो तदा।
पब्बाजित्वान समयं आचिण्णमुनं जिनानं॥ ३७॥

अनुवाद—"तब मैंने दुर्ग पर्वत पर से मनुक (नामक चोर पति) को गिरा डाकेजाना बाद डाला और श्वेतवस्त्रधारियों के पास जाकर प्रव्रजित हो गयी। उन्होंने दाढ़ी से मेरे सभी बालों का लुंचन कर मुझे प्रव्रज्या प्रदान की, परन्तु जिना धर्मोपदेश देने लगे।"

यहाँ द्रष्टव्य है कि श्वेताम्बर साधुओं को केवल 'श्वेतवस्त्रधारी' (सेतवत्थानं-श्वेतवस्त्राणाम्, श्वेतानि वस्त्राणि येषां सेतम्) शब्द से अभिहित किया गया है। उसके साथ 'निग्रन्थ' विशेषण का प्रयोग नहीं है। इससे सिद्ध है कि प्राचीन बौद्धसाहित्य में श्वेताम्बर मुनि 'श्वेतवस्त्र' या 'श्वेतपट' शब्द से प्रसिद्ध थे, 'निग्रन्थ' (निर्ग्रन्थ) शब्द से नहीं। 'निग्रन्थ' शब्द दिगम्बरजैन मुनियों के लिए ही प्रयुक्त होता था, जैसा कि उनके लिए अहिरिक (अहीक) शब्द के प्रयोग से स्पष्ट है।

श्वेताम्बर मुनियों के लिए 'श्वेतवस्त्र' या 'श्वेतपट' नाम के प्रयोग की प्राचीन उनकी उत्पत्ति के समय से ही देखने को मिलती है, जिसके प्रथम दर्शन प्राचीन बौद्धसाहित्य के उपर्युक्त ग्रन्थ में होते हैं।

२
बुद्धकालीन छह अन्यतीर्थिकों में भगवान् महावीर

गौतम बुद्ध के समय में बौद्धसम्प्रदाय के अतिरिक्त छह अन्य सम्प्रदाय भी थे, जिनके प्रवर्तकों के नाम बौद्धग्रन्थ 'दीघनिकाय' में इस प्रकार बतलाये गये हैं—

"एकमन्तं निसिन्नो खो सुभद्दो परिब्बाजको भगवन्तं एतदवोच—"सेय्यथापि, भो गोतम, समणब्राह्मणा बहुजनस्स, सेय्यथिदं-पूरणो कस्सपो, मक्खलि गोसालो, अजितो केसकम्बली, पकुधो कच्चायनो, सञ्जयो वेलट्ठपुत्तो, निगण्ठो नाटपुत्तो, सब्बेते सकाय पटिञ्ञाय अब्भञ्ञिंसु; सब्बेव न अब्भञ्ञिंसु ? यदट्ठु एकच्चे अब्भञ्ञिंसु एकच्चे न अब्भञ्ञिंसु' ति?" (सुभद्दपरिब्बाजकवत्थु / महापरिनिब्बानसुत्त / दीघनिकायपालि / भा.२ / पृ. ४०२)।

अनुवाद—"एक ओर बैठे उस सुभद्र परिव्राजक ने भगवान् से प्रश्न किया— 'भो गौतम! संघी गण-आचार्य, ज्ञानी, यशस्वी, तीर्थंकर, समाज में सम्मानित, जैसे पूरण कस्सप, मक्खलि गोसाल, अजित केसकम्बली, पकुध कच्चायन, संजय वेलट्ठिपुत्र एवं निगण्ठनाटपुत्र, क्या ये सभी अपने उपदेश में अवश्य ही (प्रतिज्ञा) सिद्धान्तों को स्वयं साक्षात्कार करके जानते हैं? या सभी नहीं जानते? या इनमें से कुछ जानते हैं, कुछ नहीं जानते?"

इन छह सम्प्रदायप्रवर्तकों में निर्ग्रन्थसम्प्रदाय के प्रणेता तीर्थंकर महावीर का उल्लेख निगण्ठनाटपुत्त नाम से किया गया है। उनके नाम में निगण्ठ (निर्ग्रन्थ) शब्द का प्रयोग सूचित करता है कि ये बौद्धसम्प्रदाय में अपरिग्रहात्मक अचेलधर्म के प्रणेता के रूप में प्रसिद्ध थे।

३
अजातशत्रु के एक मंत्री द्वारा निगण्ठनाटपुत्त की प्रशंसा

एक बार पूर्णिमा की रात्रि में राजा अजातशत्रु अपने अमात्यों के साथ छत पर बैठा हुआ था। उसने इच्छा प्रकट की, कि इस समय किसी श्रमण या ब्राह्मण से धर्मचर्या की जाय, जिससे चित्त प्रमुदित हो उठे? तब उसके किसी मंत्री ने पूर्णकस्सप की प्रशंसा की, किसी ने मक्खलि गोसाल की, किसी ने अजितकेसकम्बल की, किसी ने प्रकुध कात्यायन की, किसी ने सञ्जयवेलट्ठिपुत्त की, किसी ने निगण्ठनाटपुत्त की और जीवक कौमारभृत्य (वैद्य) ने गौतमबुद्ध की। निगंठनाटपुत्त (भगवान् महावीर) की प्रशंसा करने वाला मंत्री कहता है—

"अयं, देव, निगण्ठो नाटपुत्तो सङ्घी चेव गणी च गणाचरियो च, ञातो, यसस्सी, तित्थकरो, साधुसम्मतो बहुजनस्स, रत्तञ्ञू, चिरपब्बजितो, अद्धगतो, वयोअनुप्पत्तो। तं देवो निगण्ठं नाटपुत्तं पयिरुपासतु। अप्पेव नाम देवस्स निग्गण्ठं नाटपुत्तं पयिरुपासतो चित्तं पसीदेय्या" ति। (सामञ्ञफलसुत्तं / छ अजातसत्तुवत्थु / दीघनिकाय-पालि / भा.१ / पृ. ५२)।

अनुवाद—"देव! ये निगण्ठनाटपुत्त आजकल अपने पूरण शिष्यसंघ से घिरे रहते हैं, ये गणी हैं, गणाचार्य हैं, तत्त्वज्ञानी हैं, लोकविख्यात हैं, तीर्थंकर (स्वतंत्र मत के प्रतिपादक) हैं, समाज में प्रतिष्ठित हैं, चिर प्रव्रजित हैं और अन्य आचार्यों से वृद्ध भी हैं। अच्छा हो कि देव! उनके पास चलकर धर्मचर्या करें। हो सकता है, इस धर्मचर्या से आपका मन प्रमुदित हो उठे।"

४
बुद्धेतर छह तीर्थंकरों में निर्ग्रन्थ के आचार का निरूपण

अजातशत्रु उपर्युक्त छह आचार्यों को छोड़कर गौतम बुद्ध के पास जाता है और उनसे श्रमण का फल पूछता है। बुद्ध कहते हैं कि इस प्रश्न का उत्तर तुमने किसी

द्वितीय प्रकरण

बौद्धसाहित्य में दिगम्बरजैन मुनि

१

प्राचीन बौद्धसाहित्य में दिगम्बरजैन मुनियों का उल्लेख

श्वेताम्बरमुनि श्री कल्याणविजय जी ने लिखा है कि "बौद्धों के प्राचीन साहित्य में नग्न जैन साधुओं का कहीं उल्लेख नहीं है और विसुद्धिमग्ग, धम्मपद-अट्ठकथा, दिव्यावदान आदि में जहाँ नग्न निर्ग्रन्थों का उल्लेख मिलता है, ये ग्रन्थ उस समय के हैं, जब कि साम्प्रदायिक संगठन तक प्रकट हो चुके थे। डायोलोग ऑव् बुद्ध नामक पुस्तक के उपर से बौद्ध ग्रन्थों में वर्णित कुछ आचार भगवान् महावीर और महात्मा बुद्ध नामक पुस्तक (पृष्ठ ६१-६५) में दिये गये हैं, जिनमें 'नग्न रहने और हाथ में खाने का भी उल्लेख है। पुस्तक के लेखक बाबू कामताप्रसाद की दृष्टि में ये आचार प्राचीन जैन साधुओं के हैं, परन्तु वास्तव में यह बात नहीं है। अंगुत्तरनिकाय में साफ-साफ लिखा गया है कि ये आचार आजीविक संघ के नायक गोशालक तथा उनके शिष्य नन्दवच्छ और किससांकिच्च के हैं, जिनका बुद्ध के समक्ष निग्गंठसमण सच्चक ने वर्णन किया था।"[६९]

यद्यपि मुनि जी का यह कथन मान्य है कि बाबू कामताप्रसाद जी ने उपर्युक्त पुस्तक में जिन आचारों को जैन साधुओं का आचार बतलाया है, वे वस्तुतः आजीविक साधुओं के आचार हैं,[७०] तथापि यह कथन मान्य नहीं है कि प्राचीन बौद्ध ग्रन्थों में नग्न जैन साधुओं का कहीं उल्लेख नहीं है। सर्वप्रथम तो प्राचीन बौद्धत्रिपिटक में अनेकत्र निगण्ठनातपुत्त या निगण्ठनाटपुत्त (निर्ग्रन्थ ज्ञातृपुत्र) के नाम से भगवान् महावीर और उनका निगण्ठ शब्द से उनके अनुयायी साधुओं की चर्चा की गई है और 'निर्ग्रन्थ' शब्द 'नग्न' या 'अचेलक' के अर्थ में शास्त्रप्रसिद्ध और लोकप्रसिद्ध है, जो द्वितीय अध्याय के पञ्च प्रकरण में प्रमाण सिद्ध किया जा चुका है। इसके अतिरिक्त अंगुत्तरनिकाय नामक प्राचीन (ईसापूर्ववर्ती) बौद्धग्रन्थ में निर्ग्रन्थों को अहिरिका (अहीक=निर्लज्ज) कहकर उनके नग्न रहने का खंडन किया गया है। इस प्रकार बौद्धों के प्राचीन साहित्य में स्पष्ट नाम जैन मुनियों का ही उल्लेख है, श्वेताम्बर जैन मुनियों

६९. श्रमण भगवान् महावीर / पृ. ३३०-३३१।

७०. "सेय्यथीदं-नन्दो वच्छो, किससंकिच्चो, मक्खलि गोसालो—इति हि, भो गोतम! अचेलक-मुतकचा, हत्थापलेखना ..." महामक्खलिसुत्त-दीघनिकाय/१, मूलपरियायवग्ग/ पृ. २१७, बिहार राजकीय पालि प्रकाशन मण्डल।

की चर्चा तो एक ही स्थान पर है। आगे बौद्धसाहित्य के उन प्रसंगों को उपस्थित किया जा रहा है, जिनमें निर्ग्रन्थों और उनके नग्नत्व की चर्चा की गई है।

१.१. अंगुत्तरनिकाय में निर्ग्रन्थों की नग्नता का द्योतन

प्राचीन बौद्धसाहित्य 'त्रिपिटक' नाम से प्रसिद्ध है। २५ वर्ष ईसा पूर्व श्रीलंका में राजा वट्टगामिनी के समय में प्रमुख चार त्रिपिटकों को लिपिबद्ध किया गया।[७१] 'अंगुत्तरनिकाय' त्रिपिटकों में सुत्तपिटक का चौथा ग्रन्थ है। अतः उसकी प्राचीनता स्वयंसिद्ध है। उसमें एक 'तिकनिपात' है, जिसमें निर्ग्रन्थों के दस आक्रोशों (दोषों) का वर्णन किया गया है। उनमें एक निर्लज्जता नामक अकुशर्म भी बतलाया गया है। सूत्र का वह अंश इस प्रकार है—

"दसहि भिक्खवे आकड्ढगोहि समन्नागता निग्गण्ठा। कतमेहि दसहि? अस्सद्धा भिक्खवे निग्गण्ठा। दुस्सीला भिक्खवे निग्गण्ठा। अहिरिका भिक्खवे निग्गण्ठा। ---" (अंगुत्तरनिकाय / पा.४ / आकड्ढवग्गो / निगण्ठसुत्त)।

अनुवाद—"भिक्षुओ! निर्ग्रन्थों में दस आकर्षण हैं। कौन से दस आकर्षण? भिक्षुओ! निर्ग्रन्थ श्रद्धाहीन हैं। भिक्षुओ! निर्ग्रन्थ दुःशील हैं। भिक्षुओ! निर्ग्रन्थ अह्रीक (निर्लज्ज) हैं।"

यहाँ अह्रीकता (निर्लज्जता) नामक अकुशर्म का उल्लेख कर निर्ग्रन्थों को नग्नता का द्योतन किया गया है, क्योंकि लोक में नग्न रहना निर्लज्जता का लक्षण माना गया है। श्वेताम्बर-साहित्य में भी कहा गया है—

"तिहिं ठाणेहिं वत्थं धारेज्जा। हिरीपत्तियं, दुगुंछापत्तियं, परीसहपत्तियं।" (स्था.सू./३/३/३७७/पृ.१५०)।

अनुवाद-"तीन स्थानों से वस्त्रधारण करना चाहिए : ह्री (लज्जा) का अनुभव होने पर, जुगुप्सा का प्रसंग होने पर तथा परीषह-सहन की सामर्थ्य न होने पर।"

प्रवचनपरीक्षा नामक श्वेताम्बरग्रन्थ में दिगम्बर मुनियों की निन्दा करते हुए कहा गया है—"वस्त्रभावे च रासभादिवद्विशेषेण लज्जाहानिः स्यात्। (१/२, ३० पृ.९१)। अर्थात् वस्त्रधारण न करने पर गर्दभ आदि पशुओं के समान निर्लज्जता प्रकट होती है।"

इससे स्पष्ट बौद्धसाहित्य और श्वेताम्बरसाहित्य में दिगम्बरजैन मुनियों को अह्रीक कहा गया है। बौद्ध पालिसाहित्य के दाठावंस (१२वीं शताब्दी ई०) में भी निर्ग्रन्थ

७१. जैनधर्म / पृ.२ / प्रका. / पृ.११/ विद्यानन्द विदेहोदय निलयम, इन्दापुरी, १९९८ ई०।

को अहीक कहे जाने का उदाहरण मिलता है। यथा—

इमे अहिनिका सव्वे छद्दोसविप्पवज्जिता।
श्रद्धा खमा च दुण्णञ्ञा मग्गमोक्खविकत्थका॥ ८८॥

इति मे खिनासिलान गुहमोयो नगधिपो।
पञ्हाजोगे समारद्धो निगण्ठे ते अमेसके॥ ८९॥[०२]

बौद्ध नैयायिक कपालस्रोत ने भी जैनों का 'अहीक' नाम से उल्लेख किया है—"अहीकादक्खबोधदन्ति" (स्याद्वादमीक्षा पृ. / तत्त्वसंग्रह / पृ. ८८६)। 'वाचस्पति अभिधानकोष' में भी 'अहीक' शब्द का अर्थ 'दिगम्बर जैन मुनि' बताया गया है—"अहीकः क्षपणके नाम दिगम्बरत्वेन लज्जाहीनत्वात् तथात्वम्।" 'हेतुबिन्दुटीकालोक' में जैनमुनि के धर्म का निर्देश 'अक्षपक' और 'अहीक' नाम से हुआ है तथा श्वेताम्बराचार्य श्री चारित्रेकसूरि ने अपने 'स्याद्वादरत्नाकर' ग्रन्थ (पृ.२३०) में दिगम्बर जैनों का उल्लेख 'अहीक' शब्द से किया है।[०३]

इन उदाहरणों से स्पष्ट हो जाता है कि अंगुत्तरनिकाय में नग्नत्वजन्य निर्लज्जता-रूप असद्धर्म (बौद्धों के अनुसार) के कारण ही निर्ग्रन्थों को अहिनिका (अहीक) कहा गया है। श्वेताम्बर मुनियों को 'अहिनिका' कहे जाने का कोई कारण ही नहीं है। अतः अंगुत्तरनिकाय जैसे प्राचीन बौद्धग्रन्थ में भी दिगम्बरजैन मुनियों के लिए ही 'निर्ग्रन्थ' शब्द का प्रयोग हुआ है। प्राचीन बौद्धसाहित्य में निर्ग्रन्थों के लिए अचेलक शब्द का भी व्यवहार हुआ है। अंगुत्तरनिकाय (भा.३) के 'उळुंभजातिसुत्त' में पूरण कस्सप ने अचेलक साधुओं के श्वेतवस्त्रधारी श्रावकों को ईसादत्तभिजातीय बतलाया है। ये अचेलक साधु आजीविक सम्प्रदाय के नहीं थे, क्योंकि आजीविकों को पूरण कस्सप ने उसी सूत्र में कृष्ण और परमशुक्ल अभिजातियों में वर्गीकृत किया है। अतः सिद्ध है कि उक्त अचेलक साधु निर्ग्रन्थ ही थे। तथा अंगुत्तरनिकाय (भा.३) के उसी 'उळुंभजातिसुत्त' में श्वेतवस्त्रधारी श्रावक अचेलकों के श्रावक पहले गये हैं—"सिंहो सेतपटसावको अचेलसावके" और दीघनिकाय (भा.३) के 'पासादिकसुत्त' में उन्हें निग्गण्ठसावक कहा गया है—"निग्गण्ठस्स नाटपुत्तस्स सावका सिंहो सेतपटसावको।" इससे भी सिद्ध है कि प्राचीन बौद्धसाहित्य में निर्ग्रन्थ साधुओं को नग्न ही माना गया है। ये इस बात के प्रमाण हैं कि प्राचीन बौद्धसाहित्य (पिटकों) में प्रचुरता से नग्न जैन साधुओं का उल्लेख मिलता है। अतः मुनि श्री कल्याणविजय जी का यह दावा मिथ्या सिद्ध हो जाता है कि बौद्धों के प्राचीन ग्रन्थों में नग्न जैन

०२. कामताप्रसाद जैन : दिगम्बरत्व और दिगम्बर मुनि / पृ.वि / पृ.५२ से उद्धृत।
०३. देखिए, कामताप्रसाद जैन : दिगम्बरत्व और दिगम्बर मुनि / पृ. ४५।

साधुओं का कहीं उल्लेख नहीं है। सत्य यह है कि सम्पूर्ण बौद्धसाहित्य में 'निर्ग्रन्थ' शब्द से श्वेताम्बर साधुओं का उल्लेख कहीं भी नहीं मिलता। उनका उल्लेख 'श्वेतपट' (श्वेतवट) शब्द से हुआ है। इसका प्रमाण नीचे दिया जा रहा है।

२.३. 'अवदान' ग्रन्थ में श्वेतवस्त्र मुनियों का उल्लेख

सुत्तपिटक में पाँच निकाय हैं: दीघनिकाय, मज्झिमनिकाय, संयुत्तनिकाय, अङ्गुत्तर-निकाय और खुद्दकनिकाय। श्री भदन्त उपाध्याय ने पालिसाहित्य का इतिहास बतलाते हुए लिखा है कि खुद्दकनिकाय प्रथम चार निकायों के बाद का ग्रन्थसमूह का संकलन है (पृ.२००, २०१)। इस निकाय में लगभग अशोक के समय में बुद्धवचनविभाग के २१६ वर्ष बाद पाटलिपुत्र में हुई तृतीय संगीति तक परिवर्धन होते रहे (पृ.८५, २०१)। खुद्दकनिकाय में १५ ग्रन्थ हैं। इनमें भाषा और विषय दोनों की दृष्टि से धम्मपद, सुत्तनिपात, उदान और इतिवुत्तक कालक्रम की अपेक्षा पूर्ववर्ती हैं (पृ.२०३)। इनके बाद जातक और थेरगाथों की गाथाओं का स्थान आता है (पृ.२०४)। तत्पश्चात् कालक्रम में बुद्धवंस, चरियापिटक, विमानवत्थु, पेतवत्थु एवं खुद्दकपाठ का स्थान है (पृ.२०७)। किन्तु इनमें जो अधिक उत्तरकालीन हैं, वे भी अशोक के काल (ई०पू० ३री शती) से उत्तरवर्ती नहीं हैं (पृ.२०८)। इनका लिपिबद्धीकरण अधिक से अधिक ईसापूर्व १ली में हुआ है।

उपर्युक्त ग्रन्थ के अनुसार अपदान (संस्कृत 'अवदान') अशोकपूर्वकालीन रचना है (पृ.२०६)। "यह खुद्दकनिकाय के उत्तरकालीन ग्रन्थों में से है। इसमें बौद्ध भिक्षुओं और भिक्षुणियों के पूर्वजन्म के महान् कृत्यों का वर्णन है। जातक के समान इसमें भी कहानी के दो भाग होते हैं: एक अतीत कथावस्तु और दूसरा वर्तमान (प्रत्युत्पन्न) जीवन-सम्बन्धों। अपदान दो भागों में विभक्त है : थेर अपदान और थेरी अपदान। थेर अपदान में ५५ वर्ग हैं और प्रत्येक वर्ग में १० अपदान हैं। थेरी अपदान में ४ वर्ग हैं और प्रत्येक वर्ग में १० अपदान हैं। इस ग्रन्थ पर संस्कृत बौद्धसाहित्य का अवदानसाहित्य अधिकांशतः आधारित है।" (पृ.२१८)।

अपदान ग्रन्थ के थेरी अपदान भाग में द्वितीय वर्गान्तर्गत तृतीय अपदान में भद्रा कुण्डलकेसी नामक पुत्री की उद्वाहकाल का वर्णन है, जिसमें बतलाया गया है कि बंजरपुरी भद्रा, मनुष्य नामक एक चोर युवक से विवाह कर लेती है। लेकिन वह चोर युवक भद्रा की हत्या कर उसके आभूषण लेकर भाग जाना चाहता है। इसके लिए वह बहाना बनाकर भद्रा को एक पर्वत पर ले जाता है। किन्तु, वहाँ पहुँचने पर उसकी दुर्भिसन्धि का भेद खुल जाता है। अतः वह स्वयं ही उसे पर्वत से ढकेलकर मार डालती है और श्वेतवस्त्र-मुनियों के पास जाकर प्रव्रज्या ग्रहण कर

"दसवीं सदी के प्रसिद्ध जैन दार्शनिक आचार्य शीलांक ने एकदण्डियों को शिवभक्त बताया है।" (ज.भा.इ./पृ.२७९-२८०)।

"सत्रहवीं शताब्दी के टीकाकार पद्मेन्द्रसूरि ने बृहत्कल्प की टीका में 'आजीविकों' का अर्थ 'एकदण्डी' किया है और उन्हें 'नागपंथ' का भक्त लिखा है।

"उपर्युक्त प्रमाणों और नामोल्लेखों से जो निष्कर्ष निकलता है, उसका सार यह है कि बृहत्कल्प के उल्लेख से पाया जाता है कि वराहमिहिर के समय अर्थात् विक्रम की छठी शताब्दी के उत्तरार्ध तक आजीविक विद्यमान थे और वे 'आजीविक' नाम से ही पहचाने जाते थे।

"सिद्धसेनगणि और अभयदेवसूरि के भाष्यकाल के समय विक्रम की सातवीं शताब्दी में आजीविक 'गोशालकमत' के नाम से प्रसिद्ध होने पर भी 'पाण्डुरभिक्षु' अथवा 'पाण्डुरंगभिक्षु' कहलाने लगे थे।

"अनुयोगद्वारचूर्णि में 'पंडुरंग' शब्द का पर्याय 'सावलक' लिखा है। इससे हमें उनका 'पाण्डुरांग' यह नाम प्रचलित होने का कारण भी समझ में आ जाता है। आजीविक भिक्षु नग्न रहते थे, इस कारण संभव है कि शीतनिवारणार्थ शैव संन्यासियों की तरह इन्होंने भी अपने शरीर पर भस्म या किसी तरह की सफेद धूल (रजस्) लगाना शुरू कर दिया हो और इससे वे पंडुरंग (भूरे रंगवाले) या 'पंडुराह' (धूसर शरीरवाले) कहलाने लगे हों। कुछ भी हो, पर यह तो निश्चित है कि इन नामों के समय ही आजीविक नये धर्म-सम्प्रदायों के निकट पहुँच चुके थे और इसका परिणाम वही हुआ जो होना चाहिये था। विक्रम की आठवीं सदी में पहुँच कर आजीविक अपना अस्तित्व खो बैठे। वे हमेशा के लिए शैव और वैष्णव सम्प्रदायों में मिलकर उन्हीं नामों से प्रसिद्ध हो गये। आचार्य शीलांक इनको शैव और पद्मेन्द्रसूरि वैष्णवभक्त बताते हैं, उसका यही कारण है।

"दक्षिण भारत में तथा अन्यत्र आज तक नित्यनेमी आदि नाम संन्यासियों की जमातें जो दृष्टिगोचर होती हैं, हमारे खयाल से वे उनी नामशेष आजीविक संप्रदाय के अवशेष हैं।

"अब हम एक शंका का निराकरण कर के इस लेख को पूरा करेंगे।

"विक्रम की आठवीं शताब्दी में ही आजीविक सम्प्रदाय नामशेष हो गया था" हमारे इस कथन पर शंका हो सकती है कि यदि आठवीं शताब्दी में ही आजीविकों का सम्पत्ति हो गई होती, तो विक्रम की तेरहवीं सदी के चौथे और चौदहवीं सदी के पहले चरण में जोधपुरा 'पाल' के द्वारा पेरूमाल के मन्दिर की दीवारों पर खुदाये

गये संवत् १२२५-१२२६, १३०० और १३१६ के शिलालेखों में आजीविकों पर कर लगाने का उल्लेख कैसे होता?

"उत्तर यह है कि उक्त लेखों में आजीविकों पर कर लगाने का जो उल्लेख है, वह पंजाबलब्धाम्बर आजीविकों के लिये नहीं, किन्तु आजीविकों के सादृश्य से पिछले समय में 'आजीविक' नामधारी 'दिगम्बर' जैनों के लिये है।

"दक्षिण भारत आजीविक और दिगम्बरजैन दोनों ही का मुख्य विहारक्षेत्र था। नहीं नहीं, दोनों ही सम्प्रदायवाले दिगम्बर और अचैलिक भिक्षु थे। इस कारण सर्वसाधारण में उन दोनों का भेद समझना सहज नहीं था। लोग आजीविकों को दिगम्बर समझ लेते थे और दिगम्बरों को आजीविक भी। परन्तु जब से छोटे आजीविक आजीविक स्थिरकर पंडुरंगादि नामों से प्रसिद्ध हो वैष्णवादि सम्प्रदायों में मिल गये, तब से आजीविक शब्द केवल दिगम्बरजैनों के लिये ही रह गया। परवर्ती दिगम्बरजैनों के आजीविक नाम से प्रसिद्ध होने की जो बात कहा है, उसका कारण भी इससे समझ में आ जाता है, क्योंकि उस समय से बहुत पहले ही वास्तविक आजीविकों का अस्तित्व मिट चुका था और नग्न भिक्षुओं के लिये सुप्रसिद्ध 'आजीविक' नाम का प्रयोग नग्न भिक्षुओं के नाते दिगम्बरजैन साधुओं के लिये रूढ़ हो गया था। राजा 'राज' के लेखों में दिगम्बरजैनों के लिये जो 'आजीविक' शब्द प्रयुक्त हुआ है, उसका यही कारण है।" (ज.भा.इ./पृ.२८०-२८१)।

मुनि जी के कथन का सार यह है कि डॉ० हार्नले, कोलब्रुक हलदुप तथा चोलराजा के राज्य को जनता ने नग्नता की समानता के कारण दिगम्बरसाधुओं को आजीविकसाधु मान लिया, जो गलत था। ये सर्वथा भिन्न-भिन्न सम्प्रदायों के साधु थे। मुनि जी ने आजीविक साधुओं के लक्षण इस प्रकार बतलाये हैं—

१. ये मक्खलिपुत्र गोशालक के अनुयायी थे।

२. नग्न रहते थे, एक दण्ड रखते थे और शरीर पर भस्म लगाते थे।

३. भिक्षा में भोजन लेकर ग्रहण करते थे एवं केशलोंच भी करते थे, किन्तु मयूरपिच्छ नहीं रखते थे।[६८]

४. शिवभक्त एवं नागपंथी थे।

५. साहित्य और शिलालेखों में दिगम्बरों और आजीविकों का अलग-अलग उल्लेख हुआ है।

---

६८. समण भगवान् महावीर, पृ. २५१-२७०, तथा पं. कैलाशचन्द शास्त्री : जैन साहित्य का इतिहास / पूर्वपीठिका / पृ. ४९३।

३३
आजीविक साधु को भी 'क्षपणक' संज्ञा संभव नहीं

चूँकि 'आजीविक' बहुत प्राचीन सम्प्रदाय था और इस सम्प्रदाय के साधु भी नग्न रहते थे, इसलिए डॉ० हार्नले के समान कोई आधुनिक विद्वान् यह भी कह सकता है कि 'महाभारत' आदि में 'क्षपणक' शब्द का प्रयोग आजीविक साधुओं के लिए किया गया है। किन्तु यह कथन सर्वथा अयौक्तिक होगा। इसके निम्नलिखित कारण हैं—

१. 'क्षपणक' शब्द नग्न भूतिमात्र का वाचक नहीं है, बल्कि सम्प्रदायविशेष के अर्थात् दिगम्बरजैन सम्प्रदाय के नग्न मुनि का वाचक है। श्वेताम्बरग्रन्थों में आजीविक साधुओं को 'आजीविय' और 'पागुरंग' (भस्मलिप्त श्वेतशरीरवाले) शब्दों से उल्लेखित किया गया है, 'खंडिक' या 'क्षपणक' शब्द से नहीं। संस्कृतसाहित्य में 'क्षपणक' को 'जिन' या 'आर्हत' का अनुयायी, मयूरपिच्छधारी, 'धर्मवृद्धि' का आशीर्वाद देनेवाला आदि विशेषणों के साथ वर्णित किया गया है, जो दिगम्बरजैन साधु के विशिष्ट लक्षण हैं। अतः 'क्षपणक' शब्द दिगम्बरजैन मुनि के ही अर्थ में प्रयुक्त हुआ है।

हाँ, 'आजीविक' शब्द का प्रयोग अवश्य, नग्न-सदृश्य के कारण भ्रमवश चोलराजा (११-१२वीं शताब्दी ई०) के शिलालेखों में दिगम्बरजैन साधुओं के लिए किया गया है, किन्तु आजीविकों के लिए क्षपणक, खंडिक या निर्ग्रन्थ शब्द का प्रयोग कहीं भी नहीं हुआ है। यदि एक भी ग्रन्थ या अभिलेख में 'पागुरंग' (भस्मलिप्त श्वेतशरीर) तथा 'एकदण्डधारी' विशेषणों के साथ किसी नग्न साधु के लिए 'क्षपणक' शब्द का प्रयोग मिल जाय, तो माना जा सकता है कि 'क्षपणक' शब्द नग्नभूतिमात्र का वाचक है और उससे 'आजीविक' साधु का भी बोध होता है। इसी प्रकार एक भी ग्रन्थ में 'रजोहरण' और 'मुखवस्त्रिका' के चिह्नों के साथ 'क्षपणक' शब्द का व्यवहार उपलब्ध होने पर यह स्वीकार किया जा सकता है कि 'क्षपणक' शब्द श्वेताम्बर-विकल्पी मुनि का भी बोधक है। तथैव एक भी ग्रन्थ में 'धर्मलाभ' के आशीर्वचन सहित किसी नग्न मुनि के लिये 'क्षपणक' शब्द प्रयुक्त हुआ दिखाई दे, तो यह मानने में संकोच नहीं हो सकता कि यापनीयसाधु भी क्षपणक कहलाते थे। किन्तु किसी भी ग्रन्थ या शिलालेख में उपर्युक्त लक्षणों के साथ 'क्षपणक' शब्द का प्रयोग उपलब्ध नहीं होता। सर्वत्र 'नग्न', 'आर्हत', 'जिनभक्त' 'मयूरपिच्छधारी' एवं 'धर्मवृद्धि का आशीर्वाद देनेवाला' इन विशेषणों में से ही किसी विशेषण के साथ 'क्षपणक' शब्द का प्रयोग मिलता है। अतः यह निर्विवादरूप से सिद्ध होता है कि 'क्षपणक' शब्द से सर्वत्र दिगम्बरजैन मुनि का ही वर्णन किया गया है, 'आजीविक' आदि का नहीं।

३४
'निर्ग्रन्थ' शब्द केवल दिगम्बर जैन साधुओं के लिए प्रसिद्ध

'क्षपणक' शब्द के समान 'निर्ग्रन्थ' शब्द का प्रयोग भी दिगम्बरजैन-साहित्य बौद्धसाहित्य, बौद्धेतरसाहित्य, संस्कृतसाहित्य, शब्दकोशों और अभिलेखों में केवल दिगम्बरजैन मुनियों के लिए हुआ है। इसका सप्रमाण प्रतिपादन द्वितीय अध्याय के षष्ठ प्रकरण में किया गया है तथा प्रस्तुत अध्याय में भी इसके प्रमाण विस्तारपूर्वक द्रष्टव्य हैं।

✧✧✧

३३
आजीविक साधु को भी 'क्षपणक' संज्ञा संभव नहीं

चूँकि 'आजीविक' बहुत प्राचीन सम्प्रदाय था और इस सम्प्रदाय के साधु भी नग्न रहते थे, इसलिए डॉ० हार्नले के समान कोई आधुनिक विद्वान् यह भी कह सकता है कि 'महाभारत' आदि में 'क्षपणक' शब्द का प्रयोग आजीविक साधुओं के लिए किया गया है। किन्तु यह कथन सर्वथा अयौक्तिक होगा। इसके निम्नलिखित कारण हैं—

१. 'क्षपणक' शब्द नग्न भूतिमात्र का वाचक नहीं है, बल्कि सम्प्रदायविशेष के अर्थात् दिगम्बरजैन सम्प्रदाय के नग्न मुनि का वाचक है। श्वेताम्बरग्रन्थों में आजीविक साधुओं को 'आजीविय' और 'पागुरंग' (भस्मलिप्त श्वेतशरीरवाले) शब्दों से उल्लेखित किया गया है, 'खंडिक' या 'क्षपणक' शब्द से नहीं। संस्कृतसाहित्य में 'क्षपणक' को 'जिन' या 'आर्हत' का अनुयायी, मयूरपिच्छधारी, 'धर्मवृद्धि' का आशीर्वाद देनेवाला आदि विशेषणों के साथ वर्णित किया गया है, जो दिगम्बरजैन साधु के विशिष्ट लक्षण हैं। अतः 'क्षपणक' शब्द दिगम्बरजैन मुनि के ही अर्थ में प्रयुक्त हुआ है।

हाँ, 'आजीविक' शब्द का प्रयोग अवश्य, नग्न-सदृश्य के कारण भ्रमवश चोलराजा (११-१२वीं शताब्दी ई०) के शिलालेखों में दिगम्बरजैन साधुओं के लिए किया गया है, किन्तु आजीविकों के लिए क्षपणक, खंडिक या निर्ग्रन्थ शब्द का प्रयोग कहीं भी नहीं हुआ है। यदि एक भी ग्रन्थ या अभिलेख में 'पागुरंग' (भस्मलिप्त श्वेतशरीर) तथा 'एकदण्डधारी' विशेषणों के साथ किसी नग्न साधु के लिए 'क्षपणक' शब्द का प्रयोग मिल जाय, तो माना जा सकता है कि 'क्षपणक' शब्द नग्नभूतिमात्र का वाचक है और उससे 'आजीविक' साधु का भी बोध होता है। इसी प्रकार एक भी ग्रन्थ में 'रजोहरण' और 'मुखवस्त्रिका' के चिह्नों के साथ 'क्षपणक' शब्द का व्यवहार उपलब्ध होने पर यह स्वीकार किया जा सकता है कि 'क्षपणक' शब्द श्वेताम्बर-विकल्पी मुनि का भी बोधक है। तथैव एक भी ग्रन्थ में 'धर्मलाभ' के आशीर्वचन सहित किसी नग्न मुनि के लिये 'क्षपणक' शब्द प्रयुक्त हुआ दिखाई दे, तो यह मानने में संकोच नहीं हो सकता कि यापनीयसाधु भी क्षपणक कहलाते थे। किन्तु किसी भी ग्रन्थ या शिलालेख में उपर्युक्त लक्षणों के साथ 'क्षपणक' शब्द का प्रयोग उपलब्ध नहीं होता। सर्वत्र 'नग्न', 'आर्हत', 'जिनभक्त' 'मयूरपिच्छधारी' एवं 'धर्मवृद्धि का आशीर्वाद देनेवाला' इन विशेषणों में से ही किसी विशेषण के साथ 'क्षपणक' शब्द का प्रयोग मिलता है। अतः यह निर्विवादरूप से सिद्ध होता है कि 'क्षपणक' शब्द से सर्वत्र दिगम्बरजैन मुनि का ही वर्णन किया गया है, 'आजीविक' आदि का नहीं।

३४
'निर्ग्रन्थ' शब्द केवल दिगम्बर जैन साधुओं के लिए प्रसिद्ध

'क्षपणक' शब्द के समान 'निर्ग्रन्थ' शब्द का प्रयोग भी दिगम्बरजैन-साहित्य बौद्धसाहित्य, बौद्धेतरसाहित्य, संस्कृतसाहित्य, शब्दकोशों और अभिलेखों में केवल दिगम्बरजैन मुनियों के लिए हुआ है। इसका सप्रमाण प्रतिपादन द्वितीय अध्याय के षष्ठ प्रकरण में किया गया है तथा प्रस्तुत अध्याय में भी इसके प्रमाण विस्तारपूर्वक द्रष्टव्य हैं।

✧✧✧

"साधु वर्षा-चातुर्मास्य के लिए ग्राम में प्रवेश करें, उस समय होने वाले अपशकुनों का वर्णन करते हुए टीका कहते हैं—

चक्कधरंमि भयाओ, भुक्खामारो य पंडुरंगंमि।
तन्नन्निअ सहिएहिं, कोडिवरिसिए धुवं मरणं॥ १०७॥

"अर्थात् (ग्राम में प्रवेशक करते समय) चक्रधर भिक्षु सामने मिले, तो चातुर्मास बिताना पड़े, पांडुरंग आजीविक भिक्षु सामने मिले, तो भूख और मार सहन करनी पड़े, बौद्ध भिक्षु के सामने मिलने पर खून गिरे और रोगिक (दिगम्बरजैन) तथा अन्तरकप्पक भिक्षुओं के सामने मिलने पर निश्चित मरण हो।

"उपर्युक्त गाथा में आजीविकों के लिए पांडुरंग और दिगम्बरों के लिए कोडिय प्रयुक्त हुए हैं। यदि ये दोनों एक ही होते तो उनका भिन्न-भिन्न नामों से उल्लेख करने की कुछ भी आवश्यकता नहीं रहती।

"इन सब बातों का विचार करने पर यह बात निश्चित हो जाती है कि दिगम्बरजैन निर्ग्रन्थसंघ का ही एक विभाग है। आजीविक या बौद्धिकों से इसका कुछ भी सम्बन्ध नहीं। (अ.भ.मा./पृ.२७८-२७९)।

३२
आजीविकों का इतिहास

प्रसंगवश आजीविकों के इतिहास पर प्रकाश डालते हुए मुनि श्री कल्याणविजय लिखते हैं—

"अब हम आजीविकों के इतिहास पर दृष्टिपात करेंगे। बौद्ध महावंश में लंका राजा 'पंडुकाभय' के आजीविकों के लिये एक मकान बनवाने का उल्लेख है। महावंशकार का यह कथन ठीक हो तो ई० स० पूर्व पाँचवीं सदी के अंतिम चरण तक आजीविक लंका तक पहुँच गये थे, यही कहना चाहिये।

"उपलब्ध साधनों में आजीविकों के सम्बन्ध में सबसे प्राचीन उल्लेख तो गया पास पर्वत चहाड़ की एक गुफा की दीवार पर खुदे हुए अशोक के एक लेख का है। इसमें लिखे मुजब यह लेख महाराजा अशोक के राज्य में तेरहवें वर्ष में खोदा गया था। इस लेख का भाव यह है—"राजा प्रियदर्शी ने अपने राज्य के तेरहवें वर्ष में यह गुफा आजीविकों को अर्पण की।"

"दूसरा उल्लेख इसी महाराज अशोक के शासनलेखों में के सातवें स्तंभ पर लिखे के २७वें वर्ष में खुदे हुए लेख में आता है, जो इस प्रकार है—"मेरे सर्व-महामात्य बौद्ध संघ के, ब्राह्मणों के, आजीविकों के, निर्ग्रन्थों के और सामान्य भिन्नसंप्रदायों के कार्य में व्यापृत हो जायेंगे।

"तीसरा प्राचीन उल्लेख नागार्जुन की गुफा की दीवार पर खुदे हुए अशोक के पुत्र दशरथ के लेख में आता है, जो इस प्रकार है—'यह गुफा महाराज दशरथ ने राजगद्दी पर आने के बाद तुरन्त आवत्कार्क निवास के लिए अमान्य आजीविकों को अर्पण की।'

"पहले जो आजीविकों के प्रथम कालकालवर्ष के निवासस्थान पढ़ने की बात कही गई है, उससे सिद्ध है कि विक्रम पूर्व प्रथम शताब्दी में दक्षिण भारत में आजीविकों का खासा प्रचार था। आजीविकों का एक विशिष्ट पुस्तक मद्रासीले सुगुइर (Sasjiio Suguira) 'हिन्दू स्टोजिक ऐज रीजर्च इन जापान एण्ड जापान' नामक छोटे ग्रन्थ में आता है।

"उपोद्घात के पृष्ठ सोलह पर ग्रन्थकार कहता है—'चीनी और जापानी ग्रन्थकर्ता बार-बार इन महामाण्डलों में (अर्थात् सुप्रसिद्ध छः भारतीय सम्प्रदायों में) दो विशेष सम्प्रदायों का समावेश करते हैं जो 'निकेन्दरी' और 'आजिविक' के नाम से पहिचाने जाते हैं और एक दूसरे से बिलकुल मिलते-जुलते हैं। वे दोनों मानते हैं कि पापी जीवन का दण्ड जल्दी या देरी से भुगतना ही पड़ता है और इससे बचना असंभव होने से जैसे भी हो यह जल्दी ही भुगतना अच्छा है, जिससे कि भावी जीवन आनन्द में निर्गमन हो सके। इस प्रकार इनके विचार तामसिक थे। उपवास, मौन, अचेलपान और आकंठ अपने को दबाये रखने से इनको तपस्या के पोषक थे। सम्भवतः ये उत्पादक जैन अथवा किसी अन्य हिन्दू सम्प्रदाय को प्रशाखायें थीं।'

"उक्त लेख में उल्लिखित 'निकेन्दरी' और 'आजिविक' क्रमशः निर्ग्रन्थश्रमणों और आजीविक हैं, इसमें कुछ भी संशय नहीं है।

"बृहत्संहिता के प्रव्रज्यायोग-प्रकरण में वराहमिहिर ने जो सात भिक्षुवर्ग बताये हैं, उनमें आजीविक भी शामिल हैं।

"विक्रम की सातवीं सदी की कृति निशीथचूर्णि में 'आजीविक' शब्द का परिचय देते हुए चूर्णिकार जिनदासगणि महत्तर लिखते हैं—'आजीवक गोशालक-शिष्य होते हैं, जो पंडरभिक्षुक भी कहलाते हैं।' ओघनिर्युक्ति-भाष्यकार भी आजीविकों का पांडुरंग नाम से व्यवहार करते हैं, जैसा कि पहले बताया जा चुका है।

"अनुयोगद्वार चूर्णि में 'पंडरंग' शब्द का पर्यायवाची बताते हुए चूर्णिकार कहते हैं—"पंडरंगा णं (सा) रक्खा" अर्थात् 'पंडरंग' का अर्थ 'साजक' भिक्षु है।

१. "महावीर के साथ गोशालक का झगड़ा हुआ, उस समय जो आजीविक भिक्षु महावीर से जा मिले थे, उन्होंने अपना भान्याचार कायम रक्खा था।

२. "आजीविक और वैशालिकों के मत का पूर्वोक्त में वर्णन होने से ये निर्ग्रंथ श्रमणवर्ग के बहुत के बाहर के नहीं हो सकते।

३. "आजीविक नग्न होते थे और दिगम्बर भी नग्न होते हैं।

४. "आजीविक एक दण्ड रखते थे और दिगम्बर भी रखते हैं।

५. "मागध भाषा में 'आजीविक' शब्द का अर्थ दिगम्बर होता है।

६. "भोलाशूलपाणि के लेख में आजीविक और दिगम्बर एक खचित होते हैं।

७. "दसवीं सदी के कोषकार हलायुध ने दिगम्बरों को आजीविक लिखा है।"

(ज.प.स./पृ.२७५-२७६)।

डॉ० हार्नले के इन तर्कों की कोचनेरा करते हुए मुनि जी लिखते हैं—

१. "डॉ० थॉमस के 'महावीर से जा मिलने वाले आजीविक भिक्षु निर्ग्रन्थसंघ में मिलने के बाद भी नग्न रहते थे' इस कथन में कुछ भी प्रमाण नहीं है।

२. "पूर्वोक्त में उल्लेख होने से ही आजीविक और वैशालिकों को निर्ग्रन्थसंघ के बहुत के बाहर मान लेना भी युक्तिसंगत नहीं है, क्योंकि पूर्वोक्त दृष्टिवाद का एक भाग होने से उसमें अन्य दार्शनिकों के मत का उल्लेख होना कोई नयी बात नहीं है। दृष्टिवाद में प्रत्येक दर्शन की आलोचना-प्रत्यालोचना होना स्वाभाविक है। आजीविक और वैशालिकों के सिद्धान्त अधिकांश में जैनसिद्धान्तों से मिलते जुलते थे, इस कारण सूत्र-विधान में इनके मतानुसारी मुनियों का होना कुछ असम्भवीय या आश्चर्यजनक नहीं है। और इस कारण से ही इनको निर्ग्रन्थसंघ में मान लेना ठीक नहीं।

३. "आजीविक और दिगम्बर दोनों नग्न होने से भी एक नहीं हो सकते। आजीविकों की ही तरह पूरणकश्यप और उसके अनुयायी भी नग्न रहते थे, तो क्या कभी के चले इनको भी उन दोनों से अभिन्न मान लिया जायगा? कभी नहीं। वर्तमान समय में तिलंजी आदि अनेक वैष्णव साधुओं को जमीं नग्न रहते हैं, फिर भी यह कभी नहीं कह सकते कि दिगम्बरजैन साधु इनसे अभिन्न हैं।

४. "दिगम्बर जैनों के एक दण्ड रखने के विधान की बात भी हम सत्य नहीं मान सकते। जहाँ तक हमें ज्ञात है दिगम्बरजैन साधु किसी भी तरह का दण्ड नहीं रखते और न ऐसा करने का उनके शास्त्रों में विधान ही है।

५. "संभव भाषा में आजीविक शब्द का अर्थ 'दिगम्बर' करने से भी आजीविक और दिगम्बरजैन एक नहीं हो सकते, क्योंकि उस प्रदेश में आजीविकों का अधिक प्रचार था और वे निरन्तर नग्न ही रहते थे, इस कारण वे वहाँ दिगम्बर भी कहलाते होंगे। परन्तु इस शब्दार्थ मात्र से दिगम्बरजैन और आजीविक अभिन्न सिद्ध नहीं हो सकते। नग्न रहने से हर कोई दिगम्बर कहा जा सकता है, पर इससे वह दिगम्बरजैन ही है यह बात लेश युक्तिसंगत नहीं।

६. "भोलाशूलपाणि ने 'आजीविक' का पर्याय 'दिगम्बर' किया तो इससे भी उनकी कल्पना मात्र प्रकट होती है, न कि दिगम्बरजैनों से अभिन्नता।

७. "हलायुध ने अभिधानरत्नमाला में दिगम्बरजैनों को आजीविक कह दिया, इससे भी वे अभिन्न सिद्ध नहीं किये जा सकते। कोषकार कुछ प्रामाणिक इतिहासकार नहीं होते कि वे जो कुछ लिखें प्रमाणसिद्ध ही लिखें। अपने समय में जिस शब्द का जो अर्थ किया जाता हो, उसी उस अर्थ में लिख देना, इतना ही कोषकारों का कर्तव्य होता है। हलायुध के समय में दिगम्बरजैनों को जैनेतर लोग आजीविक नाम से भी पहचानते होंगे, इस कारण कोषकार ने उन्हें आजीविक भी लिख दिया, पर इतने ही से वे आजीविक नहीं हो सकते।

"ऊपर हमने देखा कि डॉ० हार्नले के दिये हुए प्रमाणों में एक भी प्रमाण ऐसा नहीं, जो दिगम्बरजैनों को ही आजीविक अथवा वैशेषिक सिद्ध कर सके। इनके अतिरिक्त दिगम्बरों को वैशेषिक कहने में किसी प्रकार की सांगतिकयुक्ति-विषयक सहायता भी नहीं है। यदि दिगम्बरजैन ही वैशेषिक होते, तो इनमें भी सत्, असत्, सदसत्, नित्य, अनित्य, नित्यानित्य इत्यादि वैशेषिक-सम्मत सात पदार्थ की और सात नय की मान्यता होती, पर ऐसा कुछ भी नहीं है। (ज.प.स./पृ.२७६-२७८)।

"श्वेताम्बर-जैनसंघ के अनेक नये-पुराने ग्रन्थों में दिगम्बर-सम्प्रदाय का उल्लेख और वर्णन है, पर कहीं भी इनको श्वेताम्बरों ने 'आजीविक' अथवा 'वैशेषिक' नहीं कहा। भाष्यों और चूर्णियों में सर्वत्र इनको 'बोडिय' (बोटिक) इस नाम से व्यवहृत किया है। दसवीं सदी के बाद के ग्रन्थों में आजाम्बर, दिगम्बर, दिगम्पट इत्यादि नामों का इनके लिये प्रयोग हुआ है। कहीं भी आजीविक अथवा वैशेषिक ये शब्द दिगम्बरजैनों के लिए प्रयुक्त नहीं हुए। यदि ये एक होते, तो सबसे पहले श्वेताम्बरजैन ही उनकी गोशालक-शिष्य कहकर तिरस्कृत करते, क्योंकि उनके सबसे अधिक विरुद्धता ये ही थे। पर ऐसा कहीं भी उल्लेख नहीं किया। इनके विपरीत श्वेताम्बर ग्रन्थकारों ने दिगम्बर और आजीविकों का भिन्न-भिन्न उल्लेख किया है। उदाहरण के तौर पर हम यहाँ ओघनियुक्ति भाष्य की एक गाथा का अवतरण देंगे, जिसमें आजीविक और दिगम्बरों का अलग-अलग उल्लेख है।

(सितंबर) शब्द से श्वेताम्बरों का अभिप्राय किया गया है। यथा—

> येषट्ठ चरिआतो दक्खिणदेहे सिवंकरं पत्तओ।
> तस्स सगासे धम्मं घुणिउआ तओ सम्मद्दाणे॥ २२/७८॥

अनुवाद—"राज्यच्युत राजा वीटाय को दक्षिणदेश में भ्रमण करते हुए श्वेताम्बरमुनि के दर्शन होते हैं। उनसे वह धर्म का श्रवण कर श्रावकव्रत ग्रहण करता है।"

'हलायुधकोश' (अभिधानरत्नमाला) में जहाँ दिगम्बर-जैनमुनि को 'क्षपण', 'निर्ग्रन्थ' और 'नग्नपाद' कहा गया है, वहीं रजोहरण एवं श्वेतवस्त्र धारण करनेवाले मुनि को 'सिताम्बर' नाम बतलाया गया है—

> रजोहरणधारी च श्वेतवासाः सिताम्बराः॥ २/१८९॥
>
> नग्नाटो दिग्वासाः क्षपणः अथवाश्च जीवको जैनाः।
> आजीवो मलधारी निर्ग्रन्थः कथ्यते साद्धः॥ २/१९०॥

वैष्णवसम्प्रदाय के शिवमहापुराण में जैनमतोत्पत्ति की काल्पित कथा प्रस्तुत करते हुए श्वेताम्बरमुनियों की चर्चा की गयी है, किन्तु वहाँ उन्हें अर्हिन् कहा गया है,क्षपणक या निर्ग्रन्थ नाम प्रयुक्त नहीं किया गया। प्रसंग के लिए कथा का सम्बन्धित अंश दिया जा रहा है—

त्रिपुरवासी दैत्यों का वध करने के लिए उनके धर्म में छिद्र उपस्थित करना आवश्यक था। इस हेतु भगवान् विष्णु ने अपने शरीर से एक मायामय पुरुष की सृष्टि की। उसका सिर मुंडा हुआ था, शरीर पर वैसे वस्त्र थे, हाथ में गुम्फिका (मार्जनीविशेष पात्र) और पुंजिका (रजोहरण) विद्यमान थी तथा मुख वस्त्रखण्ड से आच्छादित था—

> आसृज्य महातेजाः पुरुषं स्वात्ममायिकम्।
> एकं मायामयं तेषां धर्मविघातार्थमच्युतः॥
>
> मुण्डितं म्लानवस्त्रं च गुम्फिकाजसमन्वितम्।
> दधानं पुञ्जिकां हस्ते वाससाच्छादितं पदे पदे॥
>
> वस्त्रयुक्तं तथा हस्तं क्षीणमांसं मुखे मदा।
> धर्मेति व्याहरन्तं हि वाचा विक्लवया मुनिम्॥[५४]

यह मुंडी विष्णु के साथ उपस्थित हुआ। विष्णु ने कहा—"तुम्हारा नाम 'अर्हिन्' होगा। तुम मायाबल से वैदिक हंसों की अपधर्मभाषा में रचना करो, जो क्षेत्र और स्मार्त आचार के विरुद्ध तथा वर्णाश्रम व्यवस्था से रहित हो और कर्मविहीन ज्ञान हो—

> अविहत्कर्म ते स्यातु ह्यन्यानि च शुभानि च।
> स्थानं वक्ष्यामि ते पश्चाच्छृणु प्रस्तुतमादृतः॥
>
> मार्गविभ्रामकं शास्त्रं तत्त्वोद्वासकसंकटम्।
> श्रौतस्मार्तविरुद्धं च वर्णाश्रमविवर्जितम्॥
>
> अपधर्मशास्त्रं शास्त्रं कर्मबन्धनाय तत्।
> रचयेति प्रयत्नेन तद्विधाते भविष्यति॥[५५]

इस मुण्डी ने आपने जैसे चार शिष्यों की रचना की तथा उन्हें मायामय शास्त्र पढ़ाये। ये चारों मुण्डी चतुष्पद (बेंतविशेष) धर्म के अनुयायी थे, हाथ में पात्र लिए हुए थे, वस्त्र से मुख आच्छादित किये हुए थे, शरीर पर मैले वस्त्र थे, और 'धर्मलाभ हो' ऐसा आशीर्वाद दे रहे थे। हाथ में वस्त्रखण्ड लिपित मार्जनी (रजोहरण) विद्यमान थी तथा जीवहिंसा के भय से धीरे-धीरे चल रहे थे—

> चत्वारो मुण्डितास्तेऽथ धर्मं चातुष्पदाश्रिताः।
> हस्ते पात्रं दधानाश्च तुण्डबद्धास्य धारकाः॥
>
> मलिनत्वेन वस्त्राणि धारयन्तो ह्यधोमुखाः।
> धर्मो लाभः सदा वत्सं वदन्तमवलिहर्षतः॥
>
> मार्जनीं शिक्यपात्रश्च वस्त्रखण्डार्पितौ दधौ।
> शनैः शनैश्चलन्तो हि जीवहिंसाभयाद् ध्रुवम्॥[५६]

यहाँ विष्णु के द्वारा रचे गये मायामय पुरुष को वेतंडवाद, बार्हस्पत्यमत, रजोहरण एवं मुखवस्त्रिका धारण किये हुए तथा धर्मलाभ का आशीर्वाद देते हुए दिखलाया गया है। ये श्वेताम्बरमुनि के लक्षण हैं। शिवमहापुराण के कर्ता ने इस लक्षणवाले उक्त पुरुष को 'अर्हिन्' नाम से सम्बोधित किया है, किन्तु 'क्षपणक' या 'निर्ग्रन्थ' नाम प्रयुक्त नहीं किया। इन उदाहरणों से सिद्ध है कि जैन-जैनेतर सम्प्रदायों में श्वेताम्बर मुनि 'श्वेतपट', 'श्वेतपट' और 'सिताम्बर' नामों से ही प्रसिद्ध थे, 'क्षपणक' या 'निर्ग्रन्थ' नाम से नहीं।

५४. शिवमहापुराण / रुद्रसंहिता : पूर्वखण्ड : अध्याय ४ / श्लोक १ से ७ / पृ. ४३१।

५५. वही / श्लोक ९-१२ / पृ. ४३२।

५६. वही / श्लोक १८-२० / पृ. ४३३।

३०

'क्षपणक' शब्द यापनीयसाधु का भी वाचक नहीं

जैसा कि पूर्व (अध्याय २/ प्र.२/ शी.३) में कहा गया है, मुनि श्री कल्याणविजय जी ने 'क्षपणक' (संस्कृत) का अर्थ यापनीय साधु माना है। ('क्षपणक' का प्राकृतरूप 'खमण' है। देखिये, अ.४/ प्र.१/ शी.५/ प्र.सी./ पृ.७१)। अब यहाँ इतिहासकार श्वेताम्बर मुनियों की स्वच्छन्द कपोलकल्पनाओं का मनोरंजक दृश्य उपस्थित होता है। एक मुनिश्री कहते हैं कि 'क्षपणक' शब्द का अर्थ श्वेताम्बर-जिनकल्पी मुनि है, दूसरे कहते हैं कि वह यापनीयसाधु का पर्यायवाची है। इससे सिद्ध है कि दोनों अन्य मुनियों ने प्रमाणों के आधार पर नहीं, अपितु मनःकल्पनाओं के आधार पर कल्पित इतिहास रचने की चेष्टा की है। यदि यह क्रमशः की जाती, तो दोनों मुनियों का एक ही निष्कर्ष होता, परस्पर विरुद्ध नहीं।

सत्य यह है कि 'क्षपणक' शब्द यापनीयसाधु का भी वाचक नहीं है। इसके निम्नलिखित कारण हैं—

१. समस्त प्राचीन श्वेताम्बरग्रन्थों में एक स्वर से स्त्रीमुक्तिविरोधी दिगम्बरजैन मुनियों को ही 'बोटिक' और 'क्षपणक' कहा गया है, इसलिए मुनि कल्याणविजय जी का यह कथन सर्वथा मनःकल्पित है कि दक्षिण भारत में जाने पर बोटिक अर्थात् दिगम्बरजैन 'यापनीय' और 'क्षपणक' (खमण) नाम से प्रसिद्ध हुए। (अ.५/ प्र.१/ शी.५/ पृ.३०१)। 'क्षपणक' नाम से तो वे पहले से ही प्रसिद्ध थे। 'यापनीय' नाम से प्रसिद्ध हुए, इसका कोई साहित्यिक या शिलालेखीय प्रमाण नहीं है। दक्षिणभारत में यापनीयसम्प्रदाय की नवीन उत्पत्ति हुई थी, यह भी श्वेताम्बरसम्प्रदाय से हो। इसका समाधान प्रतिवादर 'यापनीयसंघ का इतिहास' नामक अध्याय में द्रष्टव्य है।

२. भारतीय साहित्य में 'क्षपणक' शब्द का प्रयोग यापनीयों की उत्पत्ति के बहुत पहले से मिलता है। महाभारत की रचना ई.पू. ४०० से ई.पू. १०० के बीच हुई है। उसमें नग्नक्षपणक का उल्लेख है, जबकि 'यापनीय' शब्द का उल्लेख पाँचवीं शताब्दी ई० के पूर्व भारतीय साहित्य के किसी भी ग्रन्थ या शिलालेख में नहीं मिलता। सर्वप्रथम उल्लेख मनु ४७०-४९० के बीच लिखे गये दक्षिणभारत के कदम्बवंशीय राजा मृगेशवर्मा के हल्सी-दानपत्र (लेख क्र. ९९) में हुआ है। उसमें लिखा है कि उक्त राजा ने यापनीयों, निर्ग्रन्थों और कूर्चकों को भूमिदान किया था।[९७] इस उल्लेख के आधार पर यदि यापनीयसंघ को दान दिये जाने योग्य लोकमान्यता और राजमान्यता

९७. "यापनीयनिर्ग्रन्थकूर्चकेभ्यः ---- दत्तवान्।" जै.शि.सं./ भा.३/ पृ.२।

पाने के लिए ७० वर्ष का समय भी आवश्यक माना जाय तो उसका उत्पत्तिकाल ३०० ई० से पूर्व सिद्ध नहीं होता। डॉ० आगलेट जी ने भी पाँचवीं शताब्दी ई० में ही उसकी उत्पत्ति मानी है। इससे सिद्ध है कि मुनि जी का यह कथन सर्वथा कपोलकल्पित है कि बोटिकों के लिए 'यापनीय' और 'क्षपणक' शब्दों का प्रयोग दक्षिण भारत में जाने पर हुआ था। चूँकि भारतीय साहित्य में 'क्षपणक' शब्द का प्रयोग यापनीयों की उत्पत्ति के बहुत पहले से होता आ रहा था, अतः सिद्ध है कि 'क्षपणक' शब्द यापनीयसाधु का पर्यायवाची नहीं है, अपितु दिगम्बर जैनमुनियों का ही नामान्तर है। इसलिए पाँचवीं शती ई० के बहुत पूर्व रचे गये 'महाभारत', 'पाशुपतब्रह्मोपनिषद्', 'पंचतंत्र' आदि ग्रन्थों में जो क्षपणकों की चर्चा है, वह यापनीय साधुओं की नहीं, अपितु दिगम्बरजैन साधुओं की ही है।

३. श्वेताम्बर मुनियों के समान यापनीय मुनि भी वन्दना किये जाने पर 'धर्मलाभ' का आशीर्वाद देते थे, दिगम्बरों के समान 'धर्मवृद्धि' का नहीं। 'बृहत्कल्पसूत्रभाष्य' के टीकाकार मुनिरत्नसूरि ने कहा है—"गोप्यास्तु वन्द्यमाना धर्मलाभं ब्रुवन्ति। गोप्या यापनीया इत्यर्थः।" (पृष्ठ १६१)। किन्तु 'पंचतंत्र' की पूर्वोक्त कथा में प्रधान क्षपणक नग्नित को 'धर्मवृद्धि' का आशीर्वाद देते हैं। यह क्षपणक के दिगम्बर जैनमुनि होने का अकाट्य प्रमाण है।

इन प्रमाणों से सिद्ध है कि 'क्षपणक' यापनीय साधु का नामान्तर नहीं है, अपितु दिगम्बरजैन साधु का पर्यायवाची है। अतः 'महाभारत' आदि वैदिकग्रन्थों के ग्रन्थों में 'क्षपणक' शब्द से दिगम्बरजैन साधुओं का ही वर्णन किया गया है।

३१

दिगम्बरजैन मुनि और आजीविक साधु में भेद

यह भी नहीं कहा जा सकता कि 'महाभारत' आदि वैदिक परम्परा के ग्रन्थों में 'क्षपणक' शब्द का प्रयोग आजीविक साधुओं के लिए किया गया है। इस प्रकार के कथन की संभावना और अनुकम्पना को समाप्त करने के लिए श्वेताम्बरमुनि श्री कल्याणविजय जी के निम्नलिखित वक्तव्य का अनुशीलन करना आवश्यक है। वे लिखते हैं—

"नन्दीसूत्र के उल्लेखानुसार पूर्वकाल में आजीविक और वैशेषिक मतानुसारी मुनिपरिषदों का वर्णन होने से डॉ० हार्नले का कथन है कि जिन आजीविक और वैशेषिकों का नन्दी में उल्लेख है, वे गोशालक से अलग हुए महावीर के चरम गये हुए श्रमणोपासक थे। ये दोनों सम्प्रदाय निर्ग्रन्थसम्प्रदाय से पृथक् नहीं थे। उनका यह भी कथन है कि कालान्तर दिगम्बरजैन-संघ उन्हीं आजीविक और वैशेषिकों का उत्तराधिकारी है। इसके प्रतिवाद में वे कहते हैं—

फिर वे दोनों परस्पर उसके वशीभूत न होकर मित्रता या चाकरी होने की संका करती हैं। किन्तु अन्त में 'खानि' देखकर और खेलकर कहती है—"आः ज्ञातम्। महामोहप्रवर्तितोऽयं दिगम्बरसिद्धान्तः। तत्सर्वथा दूरे परिहर्तव्यमस्य दर्शनम्।"[५५] (अच्छा, अच्छा, समझ गई। यह तो 'महामोह' द्वारा प्रवर्तित दिगम्बरसिद्धान्त है। तब तो इसके दर्शन दूर से ही परित्याज्य हैं।) यह कहकर मुँह फेर लेती है।

आगे चलकर उस क्षपणक (दिगम्बर मुनि) का एक बौद्ध भिक्षु से वार्तालाप होता है। क्षपणक कहता है—"अरे भिक्षुक! इतस्ततः। किमपि पृच्छामि।" (अरे भिक्षुक! इधर तो आओ। कुछ पूछना चाहता हूँ।)

भिक्षुक क्रुद्ध होकर कहता है—"आः पाप निह्नाचाकूते! किमेवं प्रलपसि?" (अरे पापी, छिनाल के सम्बन्ध भर्यंकर सुलक्षणे! क्या बकवास करता है?)

क्षपणक उत्तर देता है—"अरे मुञ्च क्रोधम्। शास्त्रागतं पृच्छामि।" (अरे भाई क्रोध छोड़ो। मैं शास्त्र की बात पूछना चाहता हूँ।)

भिक्षु व्यंग्य करता है—"अरे क्षपणक! शास्त्रकक्षापरिज्ञानं तेऽस्ति त्वम्?"[५६] (अरे क्षपणक! तू शास्त्रकक्षा भी जानता है?)

आगे चलकर क्षपणक बौद्ध भिक्षु को उपदेश देता है—"तद् प्रियं ते विज्ञप्तं भवामि। बुद्धानुशासनं परिहृत्याईतानुशासनमेवानुसृत्य दिगम्बरमतमेव धारयतु भवान्।"[५७] (मैं तुम्हें प्रिय और हितकारीय सलाह देता हूँ। तुम बौद्धधर्म को छोड़, आर्हतधर्म (जैनधर्म) को अपनाकर दिगम्बरमत ही धारण कर लो।)

इसके बाद क्षपणक का एक कापालिक से वार्तालाप होता है। कापालिक कहता है—"अरे क्षपणक! धर्मं तावदस्माकमवधारय।"[५८] (अरे क्षपणक! तुम पहले धर्म ग्रहण कर लो।)

यहाँ यह ध्यान देने योग्य है कि मयूरपिच्छीधारी दिगम्बर मुनि को बौद्ध भिक्षु और कापालिक 'क्षपणक' शब्द से सम्बोधित करते हैं, जिससे सिद्ध है कि दिगम्बर मुनि ही 'क्षपणक' कहलाते थे।

इस प्रकार हम देखते हैं कि वैदिकयुग से लेकर ईसा की ग्यारहवीं शताब्दी तक के वैदिक एवं संस्कृत साहित्य में दिगम्बर जैन मुनियों के उल्लेख मिलते हैं।

५५. वही / अंक ३ / पृ. ११६।
५६. वही / अंक ३ / पृ. १२४।
५७. वही / अंक ३ / पृ. १३६।
५८. वही / अंक ३ / पृ. १३८।

अतः दिगम्बर जैन-धर्म वैदिककाल (लग भग ई० पू०) से पूर्वगामी सिद्ध होता है।

२८
'क्षपणक' का अर्थ श्वेताम्बर-जिनकल्पी मुनि नहीं

'महाभारत' के उपर्युक्त उल्लेख में जो 'नग्नक्षपणक' का वर्णन है उसका उल्लेख देते हुए श्वेताम्बराचार्य श्री विजयानन्द सूरीश्वर 'आत्माराम' जी (ई० सन् १९२० के लगभग) ने भी अपने ग्रन्थ 'तत्त्वनिर्णयप्रासाद' में प्रतिपादित किया है कि "जैनमत वेदसंहिता और वेदव्यास से पहले का सिद्ध होता है।"(पृष्ठ ५१४)।

किन्तु जिस 'नग्नक्षपणक' के उल्लेख के आधार पर यह सिद्ध होता है, उसे उन्होंने दिगम्बर जैन मुनि न मानकर श्वेताम्बर-जिनकल्पी मुनि माना है, क्योंकि वे भी नग्न रहते थे। श्री 'आत्माराम' जी लिखते हैं—

"इस लेख से भी यही सिद्ध होता है कि जैनमत वेदसंहिता से भी पूर्व विद्यमान था, क्योंकि 'नग्नक्षपणक' इस शब्द का यह अर्थ है क्षपणक नग्न जो साधु। यहां में 'नग्न' इस विशेषण से जैनमत का साधु सिद्ध होता है। जैनमत में दो प्रकार के साधु होते हैं: स्थविरकल्पी और जिनकल्पी। जिनकल्पी आठ प्रकार के होते हैं, जिनमें कई जिनकल्पी ऐसे होते हैं, जो रजोहरण, मुखवस्त्रिका के बिना अन्य कोई वस्त्र नहीं रखते हैं और प्रायः जंगल में ही रहते हैं। तब टीकाकार नीलकण्ठ जी ने भी 'क्षपणक' पद का अर्थ पाषंडभिक्षु किया है।"(तत्त्वनिर्णय-प्रासाद / पृ. ५१४)।

'आत्माराम' जी की इस मान्यता का कारण यह है कि वे आवश्यकचूर्णि आदि के वर्णनानुसार दिगम्बरजैनमत की उत्पत्ति वैदिक शिवभूति के द्वारा वीर-निर्वाण सवत् ६०९ (ई० सन् ८२) में की गई मानते हैं। (जै.सि.प्र./पृ.५४२-५४३)। अतः इनके बहुत पहले रचे गये 'महाभारत' में जो 'नग्नक्षपणक' का उल्लेख मिलता है, उसे दिगम्बरजैन मुनि मानने से आवश्यकचूर्णि का कथन मिथ्या सिद्ध होता है। इस धर्मसंकट के कारण उन्हें महाभारतोल्लिखित 'नग्नक्षपणक' को श्वेताम्बर-जिनकल्पी मुनि कहने के लिए बाध्य होना पड़ा। किन्तु उनकी यह मान्यता सर्वथा प्रमाणविरुद्ध है। पूर्व (शीर्षक ५) में ऐसे अनेक उद्धरण प्रस्तुत किये गये हैं, जिनसे सिद्ध होता है कि दिगम्बर, श्वेताम्बर और वैदिकपुराणों के साहित्य, संस्कृतसाहित्य एवं शब्दकोशों में 'नग्नक्षपणक' शब्द दिगम्बरजैन मुनि के लिए ही प्रयुक्त किया गया है। सबसे महत्त्वपूर्ण बात यह है कि स्वयं श्वेताम्बरग्रन्थों में क्षपणक को स्वीमुक्ति-निषेधी दिगम्बर-जैन मुनि बताया गया है,

तथा—"क्षपणकाः सौमुण्डितशिखकं सौवर्णकं भणन्ति।"[५७] इसके अतिरिक्त क्षपणक और श्वेताम्बर-जिनकल्पिक साधु के स्वरूपभेद से भी उपर्युक्त तथ्य की पुष्टि होती है। स्वरूप की भिन्नता का बोध निम्नलिखित तथ्यों से होता है—

१. वैदिकसाहित्य, संस्कृतसाहित्य तथा अन्यकोशों में क्षपणक को निर्वस्त्र एवं नग्न बतलाया गया है, जब कि श्वेताम्बर-जिनकल्पियों ने वस्त्रसाधर्म्युक्त-जिनकल्प लौकिक वस्त्र धारण न करते हुए भी नग्न नहीं दिखते थे, क्योंकि उनकी कल्प लब्धिसत्त्व अवस्था में ढँक जाती थी। तथा वस्त्रलब्धिसहित जिनकल्पियों के लिए कल्प को छिपाने एवं शरीरादि का निर्वाह करने हेतु एक, दो या तीन प्रावरण धारण करने की अनुमति दी गयी थी, क्योंकि श्वेताम्बरमत में नग्न दिखने को निर्लज्जता एवं असंयम का हेतु माना गया है।[५८]

२. संस्कृतसाहित्य में क्षपणक को मयूरपिच्छधारी कहा गया है—"केचिद् क्षपणकैश्चित्र मयूरपिच्छधारिभिः।"[५९] जब कि श्वेताम्बर-जिनकल्पी मुनि वस्त्रविशेष रजोहरण धारण करते थे।

३. श्वेताम्बर जिनकल्पी साधु मुखवस्त्रिका भी पहनते थे,[६०] किन्तु वैदिकसाहित्य के ग्रन्थों एवं संस्कृतसाहित्य में कहीं भी क्षपणक को मुखवस्त्रिका धारण किये हुए नहीं बतलाया गया है, जब कि शिवपुराण में श्वेताम्बर (सवस्त्र) मुनि को मुखवस्त्रिकाधारी (मुखवस्त्रिकाधरो) कहा गया है। (देखिये, अगला शीर्षक)।

४. वन्दना करने पर श्वेताम्बर साधु 'धर्मलाभ हो' यह आशीर्वाद देते हैं और दिगम्बर साधु 'धर्मवृद्धि हो' यह कहते हैं।[६१] पञ्चसन्ध को पूर्वोक्त ग्रन्थ में क्षपणक को नमस्कार करने पर नई 'धर्मवृद्धि' का आशीर्वाद प्राप्त करता है।

५. श्वेताम्बरग्रन्थों में कहा गया है कि जम्बूस्वामी के निर्वाण के पश्चात् (वीर निर्वाण के ६२ वर्ष बाद) जिनकल्प का विच्छेद हो गया। (तित्थो.भा./गा. २५९३)। अर्थात् पुरुषों में जिनकल्प धारण करने योग्य शक्तियों की उत्पत्ति बन्द हो गयी। अतः जिनकल्पी (लब्धिसत्त्व-देहावरणधारी या वस्त्रसाधर्म्ययुक्त-जिनकल्पी अथवा जिनकल्प-

५७. प्रवचनपरीक्षा-वृत्ति १/१/२१-७५/पृ. ५०।

५८. प्रवचनपरीक्षा-वृत्ति १/२/३१/पृ.९३-९४ तथा हेम-वृत्ति/तित्थो.भा./गा. २५८४,२५९३।

५९. कादम्बरी/पूर्वभाग/पृ.१०६।

६०. प्रवचनपरीक्षा/वृत्ति/१/२/३१/पृ.९४।

६१. "श्वेताम्बराणां रजोहरणमुखवस्त्रिकाकल्पादिकं जिनरूपदृक्कल्पादिको वेषः --- क्षपणक धर्मलाभकारकः। --- दिगम्बरः क्षपणकः धर्मवृद्धिं ददाति।" तदुक्तसमयभूषण/प्र.८९, वृत्ति/अधिकार ४/पृ.१६०-१६१।

की) साधुओं की परम्परा का अन्त हो गया। केवल स्थविरकल्पी (वस्त्रपात्रसहित-सवस्त्रमुक्ती) साधुओं की परम्परा शेष रही। फलस्वरूप 'महाभारत' की रचना के समय (५०० ई० पू० से १०० ई० पू०) श्वेताम्बर-सम्प्रदाय में केवल वस्त्रपात्रसहित-सवस्त्रमुक्ती साधुओं का ही अस्तित्व था। अतः यदि श्वेताम्बर जिनकल्पी साधुओं को 'जिनेश्वरकल्पाभ्य' एवं 'प्रवचनपरीक्षा' के वचनों के विरुद्ध भी नग्न (पुलपिंड की तरह एकमेवाद्य) मान लिया जाय और उक्त ग्रन्थों में क्षपणकों की जो लौकुटि-लिंगक विशेषता बतलायी गयी है तथा संस्कृतसाहित्य में उनके मयूरपिच्छधारक बनने एवं धर्मवृद्धि का आशीर्वाद देने के जो लक्षण बतलाये गये हैं, उन्हें भी अपवादवेश का क्षपणक का मनमाना लक्षण बना लिया जाय, तो भी 'महाभारत' की रचना के समय श्वेताम्बर-जिनकल्पी साधुओं का अस्तित्व नहीं था, इसलिए उन्हें 'क्षपणक' शब्द से अभिहित किये जाने का प्रश्न ही नहीं उठता।

इन तथ्यों से सिद्ध होता है कि 'महाभारत' में 'नग्नक्षपणक' नाम से दिगम्बरजैन मुनि का ही उल्लेख है।

२९

श्वेताम्बर साधु 'श्वेतपट' या 'सिताम्बर' नाम से प्रसिद्ध

शिवमहापुराण में श्वेताम्बर साधु

जैन-जैनेतरों में श्वेताम्बरसाधु 'श्वेतपट' या 'श्वेताट' नाम से प्रसिद्ध थे, क्योंकि वे श्वेतवस्त्र धारण करते थे। सर्वप्रथम सम्राट् अशोक के समय में अर्थात् ई० पू० तृतीय शताब्दी में रचित माने जानेवाले बौद्धग्रन्थ अवदान में श्वेतवस्त्र (श्वेतवास) नाम से 'श्वेताट' साधुओं का उल्लेख मिलता है। इसका विवरण मैं वर्षों इसी अध्याय के ऐतिहासिक प्रकरण में प्रस्तुत है। चौथी शताब्दी ई० के कदम्बवंशीय राजा मृगेशवर्मा-प्रशस्तिलेख में निर्ग्रन्थश्वेतपटसंघ के प्रतिष्ठाधों के रूप में श्वेतपटश्रमण-संघ की चर्चा हुई है। सातवीं शती ई० के आदि में बाणभट्ट द्वारा रचित 'कादम्बरी' और 'हर्षचरित' में 'सितिवस्त्रिष्ठ-साधवः' एवं 'श्वपाटक' विशेषणों से क्षपणकों (दिगम्बरजैन मुनियों) का तथा 'श्वेतपट' नाम से श्वेताम्बर मुनियों का उल्लेख किया गया है। इसी शती ई० के दिगम्बराचार्य जोइन्दुदेव ने 'परमात्मप्रकाश' में 'क्षपणक' और 'श्वेतांबर' (श्वेतपट) इन दो सम्प्रदायों के मुनियों का नाम लिया है। 'शिवपुराणकाव्य' के मुख्यिता मलधारी हेमचन्द्रसूरि ने २५८५वीं गाथा की वृत्ति में एक पुरानी गाथा उद्धृत की है, जिसमें भी 'क्षपणक', 'बुद्ध' और 'श्वेतपट' (श्वेतवडो) इन तीन सम्प्रदायों के मुनियों का क्रमशः किया गया है। इन सबके प्रमाण पूर्व में 'महाभारत' शीर्षक के अन्तर्गत दिये जा चुके हैं। ४७३ ई० के विमलसूरिकृत 'पउमचरिय' में 'सिताम्बर'

तथा—"क्षपणकाः सौमुण्डितशिखकं सौवर्णकं भणन्ति।"[५७] इसके अतिरिक्त क्षपणक और श्वेताम्बर-जिनकल्पिक साधु के स्वरूपभेद से भी उपर्युक्त तथ्य की पुष्टि होती है। स्वरूप की भिन्नता का बोध निम्नलिखित तथ्यों से होता है—

१. वैदिकसाहित्य, संस्कृतसाहित्य तथा अन्यकोशों में क्षपणक को निर्वस्त्र एवं नग्न बतलाया गया है, जब कि श्वेताम्बर-जिनकल्पियों ने वस्त्रसाधर्म्युक्त-जिनकल्प लौकिक वस्त्र धारण न करते हुए भी नग्न नहीं दिखते थे, क्योंकि उनकी कल्प लब्धिसत्त्व अवस्था में ढँक जाती थी। तथा वस्त्रलब्धिसहित जिनकल्पियों के लिए कल्प को छिपाने एवं शरीरादि का निर्वाह करने हेतु एक, दो या तीन प्रावरण धारण करने की अनुमति दी गयी थी, क्योंकि श्वेताम्बरमत में नग्न दिखने को निर्लज्जता एवं असंयम का हेतु माना गया है।[५८]

२. संस्कृतसाहित्य में क्षपणक को मयूरपिच्छधारी कहा गया है—"केचिद् क्षपणकैश्चित्र मयूरपिच्छधारिभिः।"[५९] जब कि श्वेताम्बर-जिनकल्पी मुनि वस्त्रविशेष रजोहरण धारण करते थे।

३. श्वेताम्बर जिनकल्पी साधु मुखवस्त्रिका भी पहनते थे,[६०] किन्तु वैदिकसाहित्य के ग्रन्थों एवं संस्कृतसाहित्य में कहीं भी क्षपणक को मुखवस्त्रिका धारण किये हुए नहीं बतलाया गया है, जब कि शिवपुराण में श्वेताम्बर (सवस्त्र) मुनि को मुखवस्त्रिकाधारी (मुखवस्त्रिकाधरो) कहा गया है। (देखिये, अगला शीर्षक)।

४. वन्दना करने पर श्वेताम्बर साधु 'धर्मलाभ हो' यह आशीर्वाद देते हैं और दिगम्बर साधु 'धर्मवृद्धि हो' यह कहते हैं।[६१] पञ्चसन्ध को पूर्वोक्त ग्रन्थ में क्षपणक को नमस्कार करने पर नई 'धर्मवृद्धि' का आशीर्वाद प्राप्त करता है।

५. श्वेताम्बरग्रन्थों में कहा गया है कि जम्बूस्वामी के निर्वाण के पश्चात् (वीर निर्वाण के ६२ वर्ष बाद) जिनकल्प का विच्छेद हो गया। (तित्थो.भा./गा. २५९३)। अर्थात् पुरुषों में जिनकल्प धारण करने योग्य शक्तियों की उत्पत्ति बन्द हो गयी। अतः जिनकल्पी (लब्धिसत्त्व-देहावरणधारी या वस्त्रसाधर्म्ययुक्त-जिनकल्पी अथवा जिनकल्प-

५७. प्रवचनपरीक्षा-वृत्ति १/१/२१-७५/पृ. ५०।

५८. प्रवचनपरीक्षा-वृत्ति १/२/३१/पृ.९३-९४ तथा हेम-वृत्ति/तित्थो.भा./गा. २५८४,२५९३।

५९. कादम्बरी/पूर्वभाग/पृ.१०६।

६०. प्रवचनपरीक्षा/वृत्ति/१/२/३१/पृ.९४।

६१. "श्वेताम्बराणां रजोहरणमुखवस्त्रिकाकल्पादिकं जिनरूपदृक्कल्पादिको वेषः --- क्षपणक धर्मलाभकारकः। --- दिगम्बरः क्षपणकः धर्मवृद्धिं ददाति।" तदुक्तसमयभूषण/प्र.८९, वृत्ति/अधिकार ४/पृ.१६०-१६१।

की) साधुओं की परम्परा का अन्त हो गया। केवल स्थविरकल्पी (यष्टिवस्त्रसहित-वस्त्रधारी) साधुओं की परम्परा शेष रही। फलस्वरूप 'महाभारत' की रचना के समय (५०० ई० पू० से १०० ई० पू०) श्वेताम्बर-सम्प्रदाय में केवल यष्टिवस्त्रसहित-वस्त्रधारी साधुओं का ही अस्तित्व था। अतः यदि श्वेताम्बर जिनकल्पी साधुओं को 'शिवपुराणकथित' एवं 'प्रवचनपरीक्षा' के वचनों के विरुद्ध भी नग्न (पुलपिच्छ ही रखने वाला) मान लिया जाय और उक्त ग्रन्थों में क्षपणकों को जो लौकुटि-निर्ग्रन्थ विशेषण बतलाये गये हैं तथा संस्कृतसाहित्य में उनके मयूरपिच्छधारण करने तथा 'धर्मवृद्धि' का आशीर्वाद देने के जो लक्षण बतलाये गये हैं, उन्हें भी अपवादरूप का क्षपणक का मनमाना लक्षण बना लिया जाय, तो भी 'महाभारत' की रचना के समय श्वेताम्बर-जिनकल्पी साधुओं का अस्तित्व नहीं था, इसलिए उन्हें 'क्षपणक' शब्द से अभिहित किये जाने का प्रश्न ही नहीं उठता।

इन तथ्यों से सिद्ध होता है कि 'महाभारत' में 'नग्नक्षपणक' नाम से दिगम्बरजैन मुनि का ही उल्लेख है।

२९

श्वेताम्बर साधु 'श्वेतपट' या 'सिताम्बर' नाम से प्रसिद्ध

शिवमहापुराण में श्वेताम्बर साधु

जैन-जैनेतरों में श्वेताम्बरसाधु 'श्वेतपट' या 'श्वेताट' नाम से प्रसिद्ध थे, क्योंकि वे श्वेतवस्त्र धारण करते थे। सर्वप्रथम सम्राट् अशोक के समय में अर्थात् ई० पू० तृतीय शताब्दी में रचित माने जानेवाले बौद्धग्रन्थ अवदान में श्वेतवस्त्र (श्वेतवास) नाम से 'श्वेताट' साधुओं का उल्लेख मिलता है। इसका विस्तार से वर्णन इसी अध्याय के द्वितीय प्रकरण में द्रष्टव्य है। चौथी शताब्दी ई० के कदम्बवंशीय राजा मृगेशवर्मा के ताम्रपत्रलेख में निर्ग्रन्थश्रमणसंघ के प्रतिपक्षी के रूप में श्वेतपटश्रमण-संघ की चर्चा हुई है। सातवीं शती ई० के आदि में बाणभट्ट द्वारा रचित 'कादम्बरी' और 'हर्षचरित' में 'निर्ग्रन्थिष्ठ-साधवः' एवं 'जरत्पटक' विशेषणों से क्षपणकों (दिगम्बरजैन मुनियों) का तथा 'श्वेतपट' नाम से श्वेताम्बर मुनियों का उल्लेख किया गया है। सातवीं शती ई० के दिगम्बराचार्य जोइन्दुदेव ने 'परमात्मप्रकाश' में 'क्षपणक' और 'श्वेतांबर' (श्वेतपट) इन दो सम्प्रदायों के मुनियों का नाम लिया है। 'शिवपुराणकथित' के मुनिभक्त मलधारी हेमचन्द्रसूरि ने २५८५वीं गाथा की वृत्ति में एक पुरानी गाथा उद्धृत की है, जिसमें भी 'क्षपणक', 'बुद्ध' और 'श्वेतपट' (श्वेतवडो) इन तीन सम्प्रदायों के मुनियों का क्रमशः निर्देश किया गया है। इन सबके प्रमाण पूर्व में 'महाभारत' शीर्षक के अन्तर्गत दिये जा चुके हैं। ४७३ ई० के विमलसूरिकृत 'पउमचरिय' में 'सिताम्बर'

२३
ब्रह्माण्डपुराण में नग्न, निर्ग्रन्थ

ब्रह्माण्डपुराण (उपोद्घातपाद ३/अध्याय १४) ने भी कहा गया है कि श्राद्धकर्म में नग्नादि के दर्शन नहीं करना चाहिए। नग्नादि में बुद्धकापालें, निर्ग्रन्थों, बौद्धों, जीवकों और कापटों की गणना की गई है—

> कापालदण्डे न पश्येयुः श्राद्धकर्म व्यवस्थितम्।
> गच्छन्तस्तेन दुष्यन्ति न पितृंश्च पितामहान्॥ ३/१४/३४॥
>
> सर्वेषामेव भूतानां दयां मंगलदं स्मृतम्॥ ३/१४/३५॥
>
> ता ये त्यजन्ति मध्योहाने वै नग्नादयो जनाः॥ ३/१४/३६॥
>
> बुद्धश्रावकनिर्ग्रन्थाः शाक्या जीवकचर्पटाः॥ ३/१४/३९॥
>
> ये धर्मं नानुवर्तन्ते[1] ते वै नग्नादयो जनाः॥ ३/१४/४०॥

इन श्लोकों में वेदप्रवर्तक आदिपुरुष का परित्याग कर देनेवालों को 'नग्नादि' कहा गया है। ध्यान देने योग्य है कि यहाँ मात्र के लिए 'नग्नाः' शब्द का प्रयोग न कर 'नग्नादयः' का प्रयोग किया गया है। यह स्पष्ट करता है कि 'नग्न' शब्द से 'निर्ग्रन्थ' संकेतित किये गये हैं और 'आदयः' पद से बुद्धश्रावक, शाक्य (बौद्ध) आदि।

२४
लिङ्गपुराण में नग्न ऋषभ

इस पुराण के उपगर्भाग के अन्तर्गत भारतवर्षकथन नामक सैंतालीसवें अध्याय में भारतवर्ष नाम की उत्पत्ति का हेतु बतलाते हुए कहा गया है—

> नाभेर्निसर्ग वक्ष्यामि हिमाद्रेर्दक्षिणं च यत्।
> वर्षं तद्भारतं नाम भारती यत्र सन्ततिः॥ १/४७/१९॥
>
> ऋषभं पार्थिवश्रेष्ठं सर्वक्षत्रस्य पूजितम्।
> ऋषभाद् भारतो जज्ञे वीरः पुत्रशताग्रजः॥ १/४७/२०॥
>
> सोऽभिषिच्याथ ऋषभो भारतं पुत्रवत्सलः।
> ज्ञानवैराग्यमाश्रित्य जितेन्द्रियमहोरगात्॥ १/४७/२१॥
>
> सर्वात्मनात्मन्यात्मानं स्थाप्य परमात्मनीश्वरम्।
> नग्नो जटी निराहारो चीरध्वान्तगतो हि सः॥ १/४७/२२॥[1]

[1]. 'चीरध्वान्तगतः' होना चाहिए। 'चीर' का अर्थ है - वेड़ों पर पड़ा हुआ आवरण (आच्छादन)। (आप्टे शिवराम भाने : संस्कृत-हिन्दी-कोश)।

> हिमाद्रेर्दक्षिणं वर्षं भरताय न्यवेदयत्॥ १/४७/२३॥
>
> तस्मात् भारतं वर्षं तस्य नाम्ना विदुर्बुधाः।
> भरताद्भरतो जज्ञे सुमतिर्मतिमाँश्चिकः॥ १/४७/२४॥
>
> बभूव ऋषिसत्तमाग्र्यं भरतः सम्यगेकपत्।
> पुरावद्भुवमित्रौजो वर्षं तत्ता विशेष सः॥ १/४७/२५॥

अनुवाद—"हिमालय से स्थित इस देश के महाराज नाभि के वंश का वर्णन करता हूँ, उसे सुनो। महारानी नाभि ने मरुदेवी से 'ऋषभ' नामक पुत्र को उत्पन्न किया, जो राजाओं में श्रेष्ठ और समस्त क्षत्रियों में पूजित थे। ऋषभ से सौ पुत्रों में श्रेष्ठ भरत का जन्म हुआ। पुत्रवत्सल ऋषभ ने भरत का राज्याभिषेक किया और ज्ञानवैराग्य का आश्रय लेकर, इन्द्रियरूपी महाविषधरों पर विजय प्राप्त कर, आत्मा को ही परमात्मा या ईश्वर मानकर नग्न और जटाधारी हो, निराहार रहने लगे और इस प्रकार चीरध्वान्तगत (ज्ञानरूपी नेत्रों पर पड़े हुए पर्दे से उत्पन्न) अन्धकार से मुक्त हुये इच्छातीत और अनेहागत होकर मोक्षपद प्राप्त कर लिया। पुनः उन्होंने हिमालय के दक्षिण में विद्यमान वर्ष (देश) भरत को दे दिया था, इसलिए भरत के नाम पर उसका नाम 'भारतवर्ष' पड़ा। भरत के सुमति नाम का धार्मिक पुत्र हुआ। उसे उन्होंने अपना राज्य सौंप दिया और वन को चले गये।"

लिङ्गपुराण के इन श्लोकों में भगवान् ऋषभदेव को स्पष्ट रूप से 'नग्न' बतलाया गया है, जिससे सिद्ध होता है कि जैनेतर भारतीय सम्प्रदायों में जैन तीर्थंकर अचेलतीर्थ के प्रवर्तक के रूप में ही प्रसिद्ध थे। इससे दिगम्बरों की इस मान्यता को पुष्टि होती है कि भगवान् महावीर ने सर्वथा अचेल निर्ग्रन्थलिंग का ही प्रवर्तन किया था।

लिङ्गपुराण (भाग१ / अध्याय ३८) में नग्नता को लेकर एक बहुत ही महत्त्वपूर्ण श्लोक कहा गया है—

> इन्द्रियैर्यो जितैर्नग्नो दृक्तयेऽपि न संवृतः।
> तेनैव संवृतो गूढो न वस्त्रं कारणं स्मृतम्॥ १/३८/१४॥

अनुवाद—"जिसने इन्द्रियों पर विजय प्राप्त नहीं की है, वह वस्त्रों से आच्छादित होने पर भी नग्न (निर्लज्ज) है, किन्तु जिसने इन्द्रियों को वश में कर लिया है, वह नग्न रहते हुए भी आवृत (लज्जावान्) है। अर्थात् वस्त्रधारण करने से कोई लज्जावान नहीं बनता और वस्त्रत्याग देने से निर्लज्ज नहीं होता।"

एक अन्य श्लोक में कहा गया है—

जटिनो मुण्डिनश्चैव नग्ना नाना प्रकारिणः।
सम्पूज्याः शिवधर्मिण्यं वचसा कर्मणा तिमा॥ २/३६/६१॥

अनुवाद—"जो जटा धारण करने वाले या मुण्डी नग्न साधु हैं, वे शिव के समान मन, वचन और कर्म से पूजनीय हैं।"

इस उक्ति के द्वारा शिवपुराण में दिगम्बर जैन मुनियों के प्रति भी आदरभाव सूचित किया गया है।

ब्रह्मण्डपुराण के द्वितीय (अनुषङ्ग) पाद के अन्तर्गत २०वें अध्याय में भी उपर्युक्त भावार्थ के श्लोक मिलते हैं—

नग्ना इव हि जायन्ते देवता मुनयस्तथा।
ये चान्ये मानवा लोके सर्वे ज्ञानबलात्मकाः॥ २/२७/११८॥

इन्द्रियैर्निर्जितैर्नित्यं तृष्णासंगैर्विवर्जितः।
नैरंव संवृतो गुप्तो न वासं कारणं स्मृतम्॥ २/२७/११९॥

इन श्लोकों में सभी देव-मानवों को जन्म से नग्न ही बतलाया गया है और मुनियों को भी प्रमुखतः नाग्न्यपरीषहजयी ही कहा गया है तथा यह मनोवैज्ञानिक तथ्य उद्घाटित किया गया है कि इन्द्रियों का संवरण ही वास्तविक आवरण है।

२५

न्यायकुसुमाञ्जलि (९८४ ई०) में निरावरण, दिगम्बर

इस प्रसिद्ध न्यायग्रंथ के कर्ता उदयनाचार्य ९८४ ई० में हुए थे। इस ग्रन्थ में पृष्ठ १६ पर उन्होंने निरावरण जैन मुनियों को 'दिगम्बर' शब्द से अभिहित किया है—"निरावरणा इति दिगम्बराः।"[५१]

२६

न्यायमञ्जरी (१००० ई०) में दिगम्बर

इस ग्रन्थ के लेखक जयन्तभट्ट का काल १००० ई० के लगभग है। वे पृष्ठ १६७ पर लिखते हैं—

"क्रिया तु शिक्षिता प्रत्यागमं भवतु नाम। भस्मजटागणिडो दण्डकमण्डलुग्रहणं वा रक्तपटग्रहणं वा दिगम्बरतां वावलम्बतां कोऽत्र विरोधः।"[५२]

५१. पं० अजितकुमार शास्त्री : श्वेताम्बराभास-समीक्षा/पृ. १६८।
५२. वही/पृ. १६८।

अनुवाद—"क्रिया तो अलग-अलग मतों में भिन्न-भिन्न होती है। अतः भस्म लगाने वाले, जटा रखे जाय, दंड-कमण्डलु ग्रहण किया जाय अथवा रक्तपट धारण किये जायें या दिगम्बरत्व का ही अवलम्बन किया जाय, इसमें क्या विरोध है?"

इस कथन में जयन्तभट्ट ने रक्तपटधारी बौद्धभिक्षुओं के साथ दिगम्बर-जैन मुनियों का उल्लेख किया है।

२७

'प्रबोधचन्द्रोदय' (१०६५ ई०) में विमुक्तवसन, क्षपणक, दिगम्बर

इस नाटक की रचना चन्देल राजा कीर्तिवर्मा के राजकाल में कृष्णमिश्र नाम के वैष्णव परिव्राजक ने की थी। कहते हैं कि सन् १०६५ ई० में यह उक्त राजा के सामने खेला भी गया था।[५३] इसमें सम्प्रदायिक विद्वेषवश जैन और बौद्ध धर्मों को भूमिकाएँ में प्रस्तुत किया गया है। यह कल्पना की गई है कि इन धर्मों की सृष्टि 'महामोह' ने लोगों को वैदिकधर्म से च्युत करने के लिए की थी। इसमें 'महामोह', 'मिथ्यादृष्टि,' 'ज्ञानि,' 'श्रद्धा,' 'करुणा' आदि भावों का मानवीकरण (personification) किया गया है। तृतीय अङ्क में 'ज्ञानि' और 'करुणा' 'श्रद्धा' को ढूँढती हैं। उन्हें संदेह होता है कि 'श्रद्धा' 'महामोह' के भय से क्षपणकों (जैन और बौद्ध धर्मों) के मठों में छिप कर रह रही है, अर्थात् 'महामोह' के वशीभूत हो लोग जैन और बौद्ध धर्मों में श्रद्धा करने लगे हैं। अतः वे उसे वहाँ ढूँढने का विचार करती हैं। वहाँ वे एक दिगम्बरजैन मुनि दिखाई देते हैं।

'करुणा' भयभीत होकर 'ज्ञानि' से कहती है—"सखि! राक्षसो राक्षसः।"

'ज्ञानि' पूछती है—"कोऽयौ राक्षसः?" (कहाँ है राक्षस?)

'करुणा' कहती है—"सखि! पश्य पश्य। य एष गलन्मलपिञ्जल-जीर्णजटा-कूटैरेव-कपिः, अस्थूल्या-विकुट-विमुक्तवाससदुर्दर्शनः, शिखिशिखण्डपिच्छिकाहस्त इव एवभिक्षति।"[५४] (सखि! देखो, देखो, यह है राक्षस, बिलकुल जैसे वैसा ही लिए गेरू के कलश पिंगल दिखाई दे रहा है, जो लुंचितकेश और वस्त्ररहित (नग्न) होने से भीषण लगता है तथा हाथ में मयूरपंखों की पिच्छिका लिए हुए है। यह इसी ओर आ रहा है।)

५३. रामसिंह तोमर : संस्कृत के चार अध्याय/पृ.२१०।
५४. प्रबोधचन्द्रोदय/अंक ३/पृ.११५।